मानव मन्दिर

1194

1995

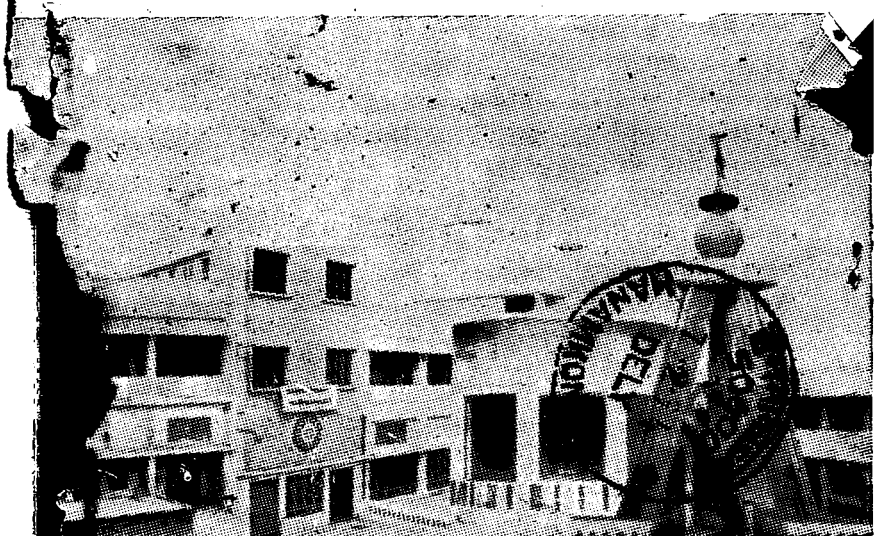

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Parkash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Praksh Sharma at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 23-1-94 को होगा ।

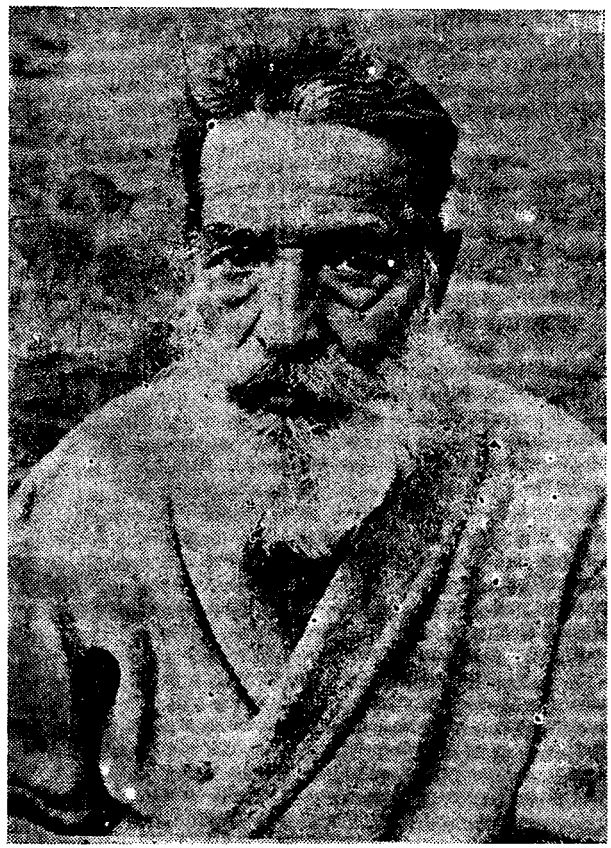

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand ji Maharaj

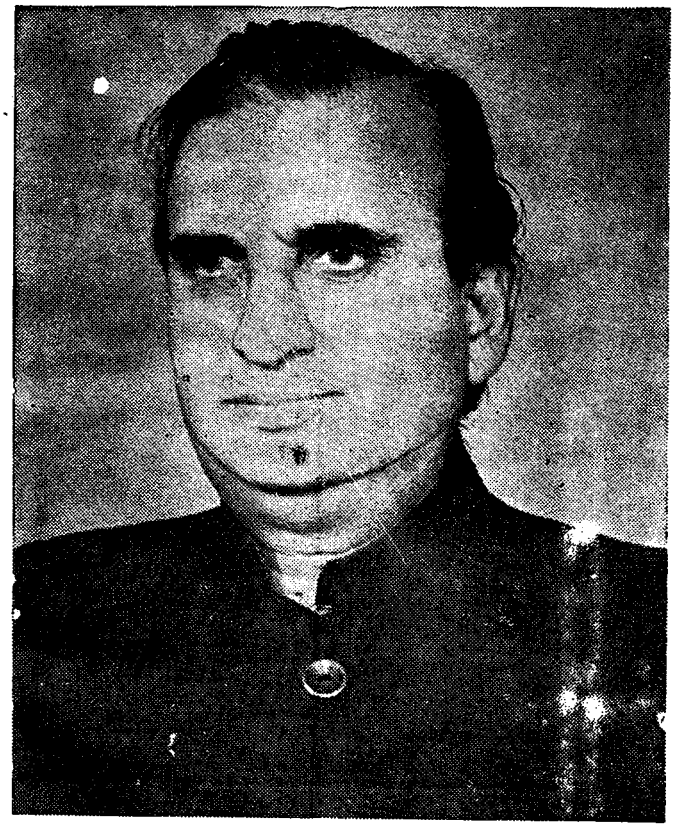

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक---

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 20	सोमवार 10 जनवरी, 1994	संख्या 9

गुप्त रहस्य

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जी महाराज

भूमिका :

दातादय ल महर्षि शिवव्रत लाल जी का साहित्य सदा लोगों को प्रेरणा देता रहता है और देता रहेगा। बहुत से पुराने जिज्ञासु सत्संगियों के बार बार लिखने पर कि महर्षि जो कि छोटी छोटी पुस्तकों में, जो सारतत्व को जानने तथा आत्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त सरल और साधारण बोलचाल की भाषा में, ज्ञान के अनेक तत्व दिए गए हैं, उन्हें समय समय पर मानव मन्दिर में प्रकाशित किया जाय। इनके अध्ययन से न हो केवल पढ़ने वालों को प्रेरणा मिलेगी, बल्कि उनकी दृष्टि ऊंची, हृदय विशाल और आत्म ज्ञान के भाव सूक्ष्म बनेंगे, जो हवट पद पर पहुंचने के लिए आध्यात्मिक सीढ़ी सिद्ध होंगे। महर्षि जी के अनमोल वचन दैनिक जीवन को चाल में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न करके, सच्ची खुशी और स्थाई आनन्द प्राप्त कराने में सहायक होने के साथ, जिज्ञासु को असलियत की भी जानकारी करायेंगे और जीवन अमली ढाँचे में ढलेगा।

सत्संगियों की प्रार्थना पर पहले एक छोटी सी पुस्तक 'सत्संग के आठ वचन, मानव मन्दिर में प्रकाशित की जा चुकी है। आशा है पाठकों को यह पुस्तक बहुत पसन्द आयी होगी। लीजिए अब आपके समक्ष है महर्षि जी की अमूल्य भेंट 'गुप्त रहस्य' इस छोटी सी पुस्तक के अध्ययन से विशेष रूप से अभ्यासियों को बहुत लाभ होगा।

इस पुस्तक के पहले व दूसरे प्रकरण में गुरु के महत्व का वर्णन किया गया है। जब तक इस बात की समझ नहीं आती कि गुरु है क्या, तब तक केवल रस्मी तौर पर गुरु का आदर-मान करने से कुछ भी हाथ नहीं आएगा। यह एक रहस्य है, जिसकी समझ अभी तक बहुत कम लोगों में है।

सह-सम्पादक
'परमपूज्य श्रीमती भाग्य शर्मा,
माता जी)

गुप्त रहस्य

पहला प्रकरण गुरु का महत्व

1) लोग गुरुमत में आते हैं। रात दिन गुरु गुरु करते रहते हैं, परन्तु यह जानते नहीं कि गुरु है क्या और उन्होंने किस ध्येय को सामने रखकर गुरु किया है?

2) मानव जीवन सहारे का जीवन बन गया है। किसी को किसी का सहारा चाहिए, और किसी को

किसी का। कुछ तो मनुष्य प्राकृतिक रूप से ही सहारा चाचता है और कुछ मनुष्य ने स्वयं ही सहारे पर रहने की आदत बना ली है। जब यह बात समझ में आ गई कि हम बिना सहारे के कोई काम नहीं कर सकते तो यह सच्चाई भी समझ में आ जानी चाहिए कि यदि सहारा ढूँढना ही है, तो गुरु का ढूंढना चाहिए, क्योंकि गुरु का सहारा ही दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है।

3) कहते हैं कि तिनके का सहारा भी बहुत होता है। बात भी सच्ची है। प्राय: खतरनाक गड्ढे में गिरने वाले आदमी, तिनके का सहारा पा कर बच जाते हैं। लेकिन क्या कारण है कि गुरु का सर्वश्रेष्ठ सहारा लेने पर भी चेले को शान्ति नहीं मिलती, सन्तुष्टि की सूरत दिखाई नहीं देती। इसका मुख्य कारण यह है कि लोगों को गुरु धारण करने का अभिप्राय समझ में ही नहीं आता और न ही वे वास्तव में, गुरु का सहारा ही लेते हैं। कहने को तो लोग बिना समझे बूझे कहते रहते हैं कि गुरु का सहारा सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु उनके व्यवहार से स्पष्ट होता है कि वे न तो गुरुमत में हैं और न ही गुरु को सहारा बनाए हैं। वे तो मनमत हैं और अपने मनमते के अहंकार में, मस्त और बेसुध रहते हैं। चूंकि ऐसे मनमतों का मन में अहंकार ही अहंकार भरा रहता है, उसमें गुरू को अन्दर जगह ही कहाँ मिलती है, सहारे की तो बात ही दूर रही। ऐसी दशा में वे परेशान रहते हैं। ऐसे

लोगों का जीवन यदि सुलझता या सुधरता नहीं तो इसमें, कोई आश्चर्य की बात नहीं। मन, काल और माया का गुलाम है और गुलामी की हालत में वह किस ओर बढ़ेगा? वह बढ़ेगा काल और माया की ओर। उस पग पग पर काल और माया की ठोकरें खानी पड़ेंगी। यदि मनुष्य ने अपने मन को गुरु के आधीन कर लिया होता या गुरु के सहारे को ढूंढा होता, तो उसे पग पग पर गुरु की सहायता बराबर मिलती रहती और वह सब आपत्तियों से सुरक्षित रहता।

4) काल और माया में दुःख है, क्योंकि यह क्षण भंगुर है और हर समय बदलते रहते हैं। इनमें स्थिरता नहीं है। अनुभव होने पर भी वह इस बात को समझता नहीं। इसलिए वह जब भी झुकेगा काल और माया की ओर ही झुकेगा। इस हालत में यह कैसे सम्भव है कि उसे गुरु का सहारा मिले।

5) गुरु नाम है दयाल का। दयाल वह है, जिसमें दया हो। काल नाम है समय का, बीते हुए समय का, जिसमें मसहलत व खींचतान हो। काल (समय) शैतान है, दयाल रहमान है काल के आधीन आदमी बहकता रहता है, जबकि गुरु के आधीन रहने से उसे शान्ति मिलती रहती है।

6) गुरु इष्ट है, आइडियल है। जिसने गुरु को मन मन दिया, उसे ही आनन्द और खुशी मिलती है।

7) मूर्ति बनाने वाला मूर्ति बनाता है, उसकी प्राण

प्रतिष्ठा करता है और अपनी ही बनायी हुई मूर्ति के सामने झुक कर कहता है :

"अखण्ड मण्डलाकारम् व्याप्तम् एन चराचरम्"

वह यह तो नहीं कहता, "ऐ पत्थर की मूर्ति मैंने तुम्हें बनाया है संवारा है, सिंगारा है।" बल्कि कहता है, 'तू सर्वव्यापक है।"

8) दयाल मत भी काफी हद तक मूर्ति पूजा का मत है, अन्तर केवल जड़ और चेतना का है। जड़ मूर्ति से जड़ भाव उत्पन्न होते हैं और चैतन्य वस्तु से चैतन्य भाव। चैतन्य मूर्ति को लोग उस दृष्टि से नहीं देखते जैसे कि एक सीधा सादा मूर्तिपूजक पत्थर की मूर्ति को देखता है। लोगों ने तो बस यह समझ रखा है कि यह चैतन्य गुरु की मूर्ति तो मनुष्य है। यही कारण है कि गुरु की ओर मन पूरी तरह नहीं झुकता। यद्यपि स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है :

गुरु को मानुष जानते,
ते नर कहिए अन्ध।
होंय दुःखी संसार में,
आगे जम का फन्द॥
गुरु को मानुष मानते,
चरणामृत को पान।
ते नर नरक ही जायेंगे,
जन्म जन्म होय स्वान॥

जो गुरु को केवल मनुष्य ही समझते हैं, उनको इतनी

भी समझ नहीं, जितनी कि एक साधे साधे मूर्तिपूजक को है। मूर्ति पूजक तो मूर्ति को मूर्ति नहीं समझता, उसे साक्षात् भगवान मानता है। यदि मनुष्य को जड़ और चैतन्य मूर्ति के अन्दर का ज्ञान हो जाए तो उसे मनमते के ख्याल से सुगमता से छुटकारा मिल सकता है और वह गुरुमुख हो सकता है।

मनुष्य ने संकीर्णता के कारण, अपनी दृष्टि को अध्यात्म की ओर ऊंचा उठने का अवसर ही नहीं दिया। व्यक्ति जहां थे, बस वहीं ठहर गए। अभिमान के नशे में चूर रहे। मुसलमान नमाज़ पढ़ते समय अपनी पगड़ी उतार कर सामने रख देता है और उसे क़िबला (काबा) बनाता है। पगड़ी तो पगड़ी है। क़िबाला बनाने का मतलब यह होता है कि उसकी दृष्टि पगड़ी से दूर न जाय। उसे वह काबा समझ कर दृष्टि उसी पर टिकाये रखे और इसी ही दृष्टि के टिकाव में वह अपनी नियाज़ की पूजा के काम को पूरा करे। यदि सन्तमत के सत्संगी को नमाज़ पढ़ने वाले के समान इतनी भी समझ बूझ नहीं है, तो हम कैसे मान लें कि वह सत्संगी है, वह दयाल मत में सम्मिलित हुआ है। किसी व्यक्ति को उसकी ज़बानी बातों द्वारा मत पहचानो। यह देखो कि ज़बानी बातें करने वाले का मन अहंकार रहित हुआ है कि नहीं। यदि अभी तक भी उसका मन जीवित है, अहंकारी है और गुरु का प्रभाव उसमें नहीं आया, तो यह समझ लीजिए कि ऐसा व्यक्ति अभी तक काल-मत में ही है।

गुरु की मौज रहो तुम धार,
गुरु की रज़ा समझ लो यार।

नहीं तू मानता मतिमन्द,
इसी से भागता दुःखद्वन्द ॥

जिसे गुरु नहीं मिला, उसके ख़्याल को कोई पक्का या सच्चा ठिकाना नहीं मिला। वह जब भी कुछ कहेगा, अपने ही विषय में कहेगा। वह अपनी दृढ़ता को छोड़ेगा नहीं। परन्तु दयाल के भक्तों की दशा, इसके बिल्कुल प्रतिकूल है। दयाल के भक्त बड़े कोमल हृदय होते हैं। गुरु की मौज का सहारा लेकर वह अभिमानरहित हो जाते हैं। वे अपने विषय में कुछ नहीं बोलते। उनकी दृष्टि तो बस गुरु की ओर ही जाती है, जिससे उन्हें क्षण प्रतिक्षण शान्ति, प्रेम, सुख तथा आनन्द मिलता है।

काल मत में रहने वालों के भाग्य में झकोले ही झकोले हैं, क्योंकि उनके अन्दर, अहंकार और अभिमान ने जो काल का असली स्वरूप है घर कर लिया है। इसी कारण काल-मत में रहने वालों के अन्दर कठोरता भरी रहती है और यह कठोरता उन्हें गड्ढे में गिराती रहती है। ऐसे व्यक्तियों के अन्दर दूरदर्शिता तो कभी आ ही नहीं सकती। न ये दूरन्देश होंगे और न परिणामदर्शिता का ज्ञान इनमें आ सकता है। बस, जैसा समय आया, उसी के ही हो रहेंगे। उनकी समझ में यह नहीं आता कि समय हमेशा बदलता रहता है।

सुबह होती है शाम होती है।
उम्र यूं ही तमाम होती है॥"

दुनिया के जितने भी मत हैं, सभी लगभग कालमत कहलाते हैं, क्योंकि सब में मनमते का गुप्त रहस्य है। दयालमत में मनमते का रहस्य [illegible] जाता है या समाप्त हो जाता है। उसमें मन का जीवन नहीं रहता, किन्तु गुरु का जीवन काम करता है। ऐसे जीवित मुरीद (शिष्य) के सिर पर पहाड़ भी पड़ जाये, तो भी वह गुरु का नाम लेता हुआ, उसकी परवाह नहीं करता।

अब सवाल यह है कि किस प्रकार मनुष्य मनमते से छुटकारा पा कर गुरुमते की ओर जाये। इसका संक्षिप्त उत्तर यह है :—

"ध्यान मूलम गुरु मूर्ति,
पूजा मूलम गुरु पदम् ।
मन्त्र मूलम गुरोर्वावाक्यम्,
मोक्ष मूलम गुरु कृपा ॥"

किसी ऐसे पूर्णपुरुष से सम्बन्ध पैदा किया जाये, जिसका बासा चौथे पद में हो और जो अशब्द गति में सदा लीन रहता हो।

लेखक तथा सेवक के उद्‌गार

सेवक

परमसन्त परमदयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज

"नाम गुमनामी में है और बे निशानी में निशां।"

हम इस लेखक का शीर्षक लेखक तथा सेवक के उद्‌गार इसलिए दे रहे हैं, क्योंकि लेखक महोदय सेवक के नाम से ही इसको प्रकाशित करवाना चाह रहे हैं। वह लिखते हैं कि लेखक दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन एम० ए० एल० एल० डी के प्रेम से पाला हुआ एक भोला-भाला बालक है, जो आज परमपूज्य पिता जी परमदयाल पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के चरणों का एक तुच्छ से तुच्छ दास है, सेवक है। भविष्य में जो कुछ भी इस बालक द्वारा लिखा जायेगा सेवक के नाम से ही प्रकाशित होगा।

जब दाता ने अपना चोला त्याग दिया, तो सेवक बहुत ही दुःखी हुआ और सदैव इस खोज में लगा रहा कि कोई सच्चा समय का सद्‌गुरु उसे मिल जाय, क्योंकि सेवक का यह दृढ़ विश्वास था कि इस संसार में, बिना जीवित गुरु के

झगड़ों और झमेलों से छुटकारा नहीं मिल सकता और न ही व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकता है। सेवक बहुत ही दु:खी था अचानक एक दिन उसको दृष्टि एक ऐसी पत्रिका पर पड़ी, जिसके टाइटल के पृष्ठ पर हिन्दी में 'मनुष्य बनो' उर्दू में 'इन्सान बनो' गुरुमुखी में 'मनुख बनो' तथा अंग्रेजी में 'BE MAN' लिखा हुआ था।

जब तलब में हद्दे इम्कां से गुज़र जाता हूं मैं।
फिर उन्हें अपनी तरफ़ बढ़ता हुआ पाता हूं मैं॥

इस पत्रिका को कुछ वर्ष तक बड़े प्रेम से पढ़ता रहा और इससे सेवक के मन को बहुत शान्ति मिली। अन्त में पूर्ण विश्वास रखता हुआ सेवक परमपिता की आपार कृपा से उनके चरणों में अपनी अन्तिम आयु बिताने के लिए उपस्थित हो गया। या यूं कहिए कि उनकी ही अपार दया स्वयं उनके चरणों में ले गई।

ऐसे लगा कि सेवक का दोबारा जन्म हुआ। वहां उनके चरणों की शरण में रहने के पश्चात यह अनुभव हुआ कि जब हम सब संसारी जीव मानव के रूप में उत्पन्न होते हैं, तो हमें मानव बन कर ही रहना चाहिए। परन्तु दु:ख की बात तो यह है कि हम सच्चे मानव नहीं हैं। सेवक सब को मानव मानता है, क्योंकि वास्तव में हम हैं ही मानव, मनु की सन्तान। सेवक इसी भाव को ध्यान में रख कर लिख रहा है।

वह कौनसी जीवन परम्परा या मर्यादा है, जिसको रहनी तथा गहनी कहते हैं, जिस से कि हम, इस संसार में मानव

बन जाय ?

"All are born as human beings, but we usually behave like beas s or animals. The sevak or servant will like to give his personal observations and suggest how to behave like a true human being in the service of God."

"सब मनुष्यों की उत्पत्ति मानव के ही रूप तथा स्थिति में हुई है, किन्तु हमारी रहनी मानव जैसी नहीं, बल्कि एक पशु जैसी है। सेवक अपने निज अनुभव के आधार पर आपको यह बताना चाहेगा कि हम किस प्रकार मानवता का व्यवहार करें और प्राणीमात्र की सेवा में वास्तविक रूप में मनुष्य बनें।

गर्भधान से पूर्व तथा उसके पश्चात हम विवाह करते हैं और विवाह का अर्थ या उद्देश्य प्राचीन सभ्यता के अनुसार सन्तान पैदा करना है। ऐसी सन्तान जो नेक हो, सदाचारी हो, आज्ञाकारी हो, माता पिता सम्बन्धियों, जाति तथा देश की सेवा करने वाली हो। कोई धर्म, सम्प्रदाय या पन्थ यह नहीं कहता कि बुरी सन्तान पैदा करो।

जब एक स्त्री तथा पुरुष सहवास करते हैं, तब स्त्री को सन्तान पैदा न हो अर्थात गर्भ न रह जाय यह सम्भव नहीं। यह बात दूसरी है किसी के रज और वीर्य में त्रुटि हो।

आजकल जो अन्धाधुन्ध सन्तानें हो रही हैं, इस विचार से उनको उत्पन्न नहीं किया जाता कि वे नेक सदाचारी मनुष्य बन कर मानवमात्र की सेवा करें। विवाह का उद्देश्य

भोग विलास ही रह गया है, अधिक से अधिक भोग विलास। पहले तो कोई सन्तान चाहता ही नहीं। जब गर्भ ठहर जाता है, तो गर्भपात कराने के तरीके ढूंढे जाते हैं, उसके बावजूद भी यदि सन्तान हो जाती है तो ऐसी सन्तान से आप क्या आशा रख सकते हो। क्या वे देशभक्त सदाचारी या माता पिता को आज्ञापालन करने वाले हो सकते हैं? हरगिज़ नहीं। ऐसी बिना बुलाई सन्तानें आगे चल कर समाज में समस्याएं उत्पन्न करती हैं इसका परिणाम आप न ही केवल भारत में बल्कि संसार भर में देख रहे हैं। विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, जो न स्वयं पढ़ते हैं और न ही दूसरों को पढ़ने देते हैं, यहाँ तक कि वह अपने गुरुओं तथा शिक्षकों का भी आदर नहीं करते हर देश, हर राष्ट्र, हर जाति का दिन प्रतिदिन पतन हो रहा है हिंसा का साम्राज्य फैल रहा है, विश्वभर में अशान्ति फैल रही है। क्यों?

सेवक सोचता है कि इस अराजकता तथा अशान्ति फैलाने के उत्तरदायी संसार भर के माता पिता ही हैं, जो सन्तान की दृष्टि से सन्तान पैदा नहीं करते। सेवक का विचार है कि जब स्त्री गर्भवती हो, तो पुरुष उससे भोग विलास करना बन्द कर दे और स्त्री को चाहिए कि वह हर समय अपने मन में शुभ संकल्प, शुभ भावनायें और महा-पुरुषों का ध्यान और स्वाध्याय करते हुए प्रसन्नचित तथा शान्तिपूर्वक गर्भ समय को बिताए, इससे सन्तान अवश्य ही होनहार, तेजवान, बलवान, साहसी तथा सदाचारी होगी। सेवक का विचार है कि जब तक बच्चा मां का दूध पीता है स्त्री पुरुष सहवास की भावना को मन में ही न लायें और

न हो बच्चे के सामने ऐसा कोई कर्म करें, जिससे विलासता टपकती हो। यदि आप अपनी सन्तान को नेक तथा सदाचारी बनाना चाहते हैं तो पहले आपको अपने आपको नेक तथा बनाना होगा।

सेवक का जो मुख्य विषय है वह है मनुष्य क्या है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? भक्ति और मालिक का मिलाप कैसे प्राप्त हो सकता है? मानव के कर्त्तव्य क्या हैं? निष्काम कर्म या निस्वार्थ कर्म का क्या आशय है? सबसे पहला और मुख्य प्रश्न है परमात्मा के अस्तित्व का।

सेवक कहता है कि ईश्वर है। सेवक अद्वैत का मानने वाला है। प्रकृति कहो, नेचर कहो, माया कहो जो भी कुछ इस सृष्टि में दृष्टिगोचर हो रहा है ईश्वर या परमेश्वर का ही प्राकट्य है। सूर्य के प्रकाश में उसकी ही लालिमा है, चन्द्रमा के सौन्दर्य में उसकी ही शीतलता है, आनन्द में, परमानन्द में उसकी ही सत्ता है। समुद्र में उसकी ही गहराई है और आकाश में उसकी ही ऊंचाई है। पृथ्वी पर उसी ही का आदेश काम कर रहा है। सृष्टि के कण कण में वह ही ओत प्रोत है। यदि वह न हो तो यह समस्त खेल नष्ट भ्रष्ट हो जाय।

वह आंख से नहीं देखता, किन्तु आंख उससे देखती है। वह कान से नहीं सुनता, किन्तु कान उससे सुनते हैं। वह जिह्वा से बोलता नहीं, किन्तु जिह्वा उससे बोलती है। वह स्वांस से दम नहीं लेता, बल्कि स्वांस उससे दम लेती है। वह मन से विचार नहीं करता, किन्तु मन उससे विचार करता है। अतः वह आँख

आँख है, कान का कान है, जिभ्या की जिभ्या है, जान को जान है, प्राण का प्राण है, मन का मन है आदि।

पुरुष व प्रकृति उसी की ही देख-रेख में चलते हैं। अब प्रश्न उठता है यदि परमात्मा प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है और यदि चारों ओर अद्वैत का प्राकट्य है तो फिर द्वैत कैसा ? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक वस्तु की वास्तविक उत्पत्ति एक ही है। अन्तर है केवल नाम रूप का। कुम्हार के पास मिट्टी केवल एक ही होती है, वह उसी ही मिट्टी से सुराही, प्याला, मटका, हांडियां, नांद, आदि आदि बनाता है। मिटटी तो एक ही है बर्तनों के नाम तथा शकलें अलग अलग हैं। इसी का नाम ही माया है और इसी को ही धोखा, मोह, भ्रम या अज्ञान कहते हैं।

परमात्मा के ज्ञान हो जाने के पश्चात् मानव का सही ज्ञान प्राप्त करना भी अनिवार्य है। जिस प्रकार परमेश्वर की प्रकृति के तीन रूप अपरा प्रकृति, परा प्रकृति और परमेश्वर हैं इसी प्रकार मानव की प्रकृति की दशा है।

1) स्थूल शरीर : अर्थात् तन, देह, शरीर मानव की अपरा प्रकृति है।

2) सूक्ष्म शरीर : अर्थात् मन, चित, बुद्धि, और अहंकार उसकी परा प्रकृति हैं।

3) कारण शरीर : आत्मा अर्थात् कारण प्रकृति, जिसका नाम मानव है

क्रमिक उन्नति (Process of Evolution)

हमारे प्राचीन खण्डहर, जिनकी आयु वैज्ञानिकों ने लखों वर्ष लगाई है, वह भी अधूरी है। हम कभी स्टोन एज में थे, कभी ब्रोन्ज़ एज में। हम सब क्रमिक उन्नति की दशा से गुज़र रहे हैं। जो मानव इस योनि में निर्बल है या उसमें कुछ दोष आदि हैं और वह उनको सच्चे दिल से दूर करने की कोशिश करता रहता है, चाहे वह इस जन्म में सफल हो या न हो, वह अगले जन्म में अवश्य श्रेष्ठ जीवन में आएगा। यदि वह इस जन्म में सांसारिक झगड़ों और हेरा फेरी से बचने की कोशिश नहीं करता, तो वह अगले जन्म में भी इस क्रमिक उन्नति के सिद्धान्त के अनुसार श्रेष्ठ या उत्तम मानव नहीं बनेगा।

सच्चा मनुष्य कैसे बना जाय ? 'मनुष्य बनो' एक अपूर्व और मन मोहक शब्द है। यदि हम सचमुच ही मनुष्य बन जाते तो बिश्व में अशान्ति का साम्राज्य नहीं होता। हमारे यहां दस अवतार मुख्य माने गए हैं। यदि ध्यानपूर्वक सोचा जाय तो सभी दसों अवतार मनुष्य के इस जीवन में आदि से अन्त तक पूरे हो जाते हैं। एक सच्चे मानव के लिए इन सभी दसों अवतारों की श्रेणियों से पार होना अनिवार्य माना गया है। प्राचीन काल से ही यह धारणा प्रबल थी कि समस्त संसार का एक ही धर्म होना चाहिए और आज भी इस बात पर बल दिया जा रहा है। ऐसा होना सम्भव है या नहीं, इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी मालिक की अपार कृपा से समय समय पर सन्तों का जन्म हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। सन्तमत के पथ प्रदर्शक सन्त कबीर, गुरु नानक देव, राधा-स्वामी दयाल जी महाराज तथा अनेक दूसरे सन्त, महात्मा

और सूफ़ी हुए हैं, जिनकी शिक्षा धार्मिक जगत् में अपना अपूर्व स्थान रखती है। उनकी शिक्षा और वाणी में, वह वस्तु मिलती है, जो किसी शास्त्र आदि में पूर्णरूप से नहीं मिलती। जीवन का जो आनन्द सन्तमत की शिक्षा में है उसकी तुलना नहीं की जा सकती। परन्तु यह आनन्द प्राप्त तभी होता है जब जिज्ञासु साधन तथा अभ्यास करे और सत्पुरुषों का संग करे और सच्चे हृदय से शरणागत हो जाए।

❋ ❋ ❋

सत्संग

परमसन्त मानव दयाल जी महाराज

हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) 7-2-92

तू दया का रूप प्यारे,
तू दया भंडार है ।
कर दया दृष्टि दयामय,
तुझ ही से अधिकार है ॥
सन्त सदगुरु तुझको कहते,
है नहीं मैं जानता।
मेरे अनुभव में दया करूणा का,
तू भंडार है ॥
मेरे दाता शीश पर मेरे,
दया का हाथ रख ।
तू है दानी दीन बन्धु,
जगत् का दातार है ॥
मेरे अन्तर में समाना,
मेरे सांसों सांस में ।
तू है व्यापक यह समझ दे,
सच्चा जो अधिकार है ॥
आस रखकर गुरु कृपा की,
नित करो अभ्यास तुम।

रात दिन छिन छिन तुम्हारा,
वह सदा रखवार है ॥
छोड़ो ममता छल कपट चतुराई,
गुरु से नेह जोड़ ।
भक्ति उसकी कर,
वह सच्चा प्रेम का भंडार है ॥
राधास्वामी राधास्वामी,
राधास्वामी को सुमिर ।
राधास्वामी सर्व रक्षक,
सर्वदा अधिकार है ॥

गुरु र्देवजगत् व्याप्तं, ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नहिं किंचित्, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
मानव धर्मस्य धातारं, दातादयालस्य प्रियतमम् ।
सन्त धर्मस्य गोप्तारं, फकीरं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

राधास्वामी :

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सद्गुरु रूप उपस्थित सत्संगी भाइयो और बहनों ! हैदराबाद के इस दौरे के सिलसिले में यह तीसरा सत्संग है। इस सत्संग के लिए दातादयाल जी महाराज का जो शब्द पढ़ा गया है, वह बहुत ही मार्मिक है। यह गुरु परम्परा उपनिषद काल से चली आ रही है। राधास्वामी मत कोई नया मत नहीं है। यह सनातन धर्म के विकास की अन्तिम सीढ़ी है। यह मत हर समय मौजूद था। समय की ज़रूरत के मुताबिक सन्तों ने अवतार लिए। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण जी ने कहा है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

भगवान श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा, "हे अर्जुन! यह सुरत शब्द योग, पराभक्ति का योग मैंने सबसे पहले विवस्वानु को बताया था। आगे चलकर विवस्सुवान ने इस रहस्य को मनु को बताया और मनु ने इक्ष्वाकु को बताया। इक्ष्वाकु के द्वारा यह योग राज ऋषियों में प्रचलित हुआ। इस योग के द्वारा उन्होंने परमतत्व को प्राप्त किया। मैं तुम्हें आज उसी योग को बता रहा हूं।" अर्जुन के मन में सन्देह हुआ। अर्जुन ने कहा, "महाराज! विवस्सुवान तो बहुत पहले हुए और आप अब हुए हैं, तो मैं कैसे मानूं कि आपने विवस्सुवान को भी यह योग बताया था।" यह बात सुनकर भगवान श्री कृष्ण जो ने अर्जुन को कहा :

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लनिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

वैसे गुरु, परमतत्व, मालिकेकुल न कभी पैदा होता है न कभी मरता है। वह जगत् का सृजन करता है, उसका पालनपोषण करता है और फिर उसे अपने में समाविष्ट कर लेता है। यह उस मालिक की मौज है, खेल है। अब प्रश्न उठता है कि उस मालिक को जगत् बनाने की क्या जरूरत थी? हमें दुःख में तड़पाने की क्या जरूरत थी? इस सवाल का जबाब ऋषियों को एक सभा में दिया गया। सभा में किसी ऋषि ने कहा कि यह उस मालिक की लीला है। लीला कहते हैं खेल का। लेकिन इस लीला का या

खेल का कोई मकसद होना चाहिए। वैसे खेल का कोई मकसद नहीं होता। खेल में आनन्द मिलता है। इसलिए खेल को सुलक्ष्य कहते हैं। वह अपना लक्ष्य आप है। बच्चा क्यों खेलता है? इस सिद्धान्त पर भी विचार किया गया। कहते हैं कि बच्चे के अन्दर जरूरत से ज्यादा शक्ति होती है। जब बच्चे के अन्दर शक्ति ज्यादा हो जाती है, तो वह उस शक्ति का प्रयोग खेल में करता है। यह जितनी भी रचना है, वह मालिक की वासना से हुई है। हम जो कुछ भी रचना करते हैं, उस रचना से पहले वासना होती है। उस वासना को पूरा करने के लिए हम रचना करते हैं। वैसे वासना शब्द मालिक के साथ जोड़ना गलत है, क्योंकि वासना में कमी होती है और मालिक में कोई कमी नहीं है। इसलिए इसे मालिक की मौज कह सकते हैं। एक दृष्टि से जब उसके अन्दर हिलोर आती है, तो उसकी माचुर्य शक्ति बाहर बहने लगती है जिससे जगत् की सृष्टि हो जाती है, तो यह उस मालिक की लीला है। ऋषियों ने सृष्टि के सम्बन्ध में बताया कि ब्रह्म एक था। उसने इच्छा की कि वह अनेक हो जाये। "एको हम: बहुस्याम" मैं एक हूं अनेक हो जाऊं। जब अनेकत्व में आकर वह ऊब गया, तो उसने कहा. "मैं एक हो जाऊं"। यह सृष्टि उस मालिक का स्वभाव है। जैसे हीरे का स्वभाव है हीरे के अन्दर से किरणें निकलती हैं और फिर उसमें समा जाती है। किरणें निकलती हैं और जगत् बनता है। भूरभुव: स्व: महा: जन: तप: सत्यम् और कोटि कोटि ब्रह्माण्ड बनते हैं। हम उसी मालिक से निकले हैं। हम इस जगत का तमाशा देखने के लिए आए। जहां से हम आए है, वहां कुछ भी नहीं था। विमायें नहीं थीं। भौतिक शरीर नहीं था।

मनोरथ कोष, प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष नहीं था। वह मालिक अपने आप में विशुद्ध ज़ातेपाक निजस्वरूप है। उसके अन्दर कोई विकार नहीं है। वह अविनाशी है, प्रेम का भंडार है :

सन्त सतगुरु तुझको कहते हैं,
नहीं मैं जानता ।
मेरे अनुभव में दया करूणा का,
तू भंडार है ।

अब आप सन्तसतगुरु मानो या मानो, लेकिन वह तुम्हारे अन्दर भी मौजूद है। यह दया और करूणा ऊपर बैठे हुए ज़ाते पाक में नहीं है। यह दया तब आती है, जब मालिके कुल मनुष्य के शरीर में आता है।

तू दया का रूप प्यारे,
तू दया भण्डार है ।
कर दया दृष्टि दयामय,
तुझ ही से अधिकार है ॥

वह प्यारा दया का रूप क्यों है ? क्योंकि जब हम उस प्रीतम के अन्दर मिले हुए थे, तब हम एक थे। प्रेम की पराकाष्ठा के अन्दर तू और मैं दोनों समाप्त हो जाते हैं। दोपना नहीं रहता। दातादयाल जी कहते हैं कि उस मालिक को अनामी कहो, अनन्त दया का अनन्त सागर कहो, दयाल कहो, चैतन्य कहो, लेकिन मैं उसे प्रेम का सागर मानता हूं। उसने यह जगत् क्यों बनाया ? हमें प्रेम का अनुभव कराने के लिए। जब हम उस मालिक से अलग होंगे तो अलग होकर

हमें पता चलेगा कि प्रेम क्या चीज़ है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसका मूल्य तब होता है, जब उससे बिछुड़ते हैं। इसलिए जब हम उस मालिक से बिछुड़ कर जगत् में आए, तब हमें उसके मूल्य का पता लगा। इसलिए यह जगत् प्रेममय है और प्रेम के अनुभव के लिए बनाया गया है। इस जगत् में आकर के हमें यह पता चलता है कि हमारा सच्चा प्रीतम कौन है? असली प्रीतम की तड़प हमारे अन्दर मौजूद है। प्रेम के अनेक रूप हैं। ईर्ष्या भी प्रेम है। जब कोई ईर्ष्या करता है तो, वह इसलिए करता है कि जिसको वह प्रेम करता है उसको कोई और प्रेम न करे।

कल मैंने आपको बताया था कि यह जगत परमाणुओं से बना है। परमाणु क्या है? परमाणु के अन्दर एक केन्द्र होता है, और उसके चारों तरफ इलैक्ट्रान प्रोटीन अर्थात आकर्षण, विकर्षण शक्तियां को परिक्रमा कर रही हैं। आकर्षण और विकर्षण तत्व क्या है? ये हैं प्यार और नफरत। इनको बनाये रखने वाली शक्ति है, परमतत्व मालिक की।

'गुरुर्देव जगद् व्याप्तं।
ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्।
गुरुः परतरं नहिं किंचित् 'तस्मै श्री गुरवे नमः'

अर्थात् गुरु रूपी दिव्य शक्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव अर्थात् सृष्टि, स्थिति और प्रलय के रूप में सारे जगत् में ओत प्रोत है। इस दिव्य शक्ति से परे और कुछ भी नहीं है। इसलिए ऐसे गुरु को नमस्कार है।

गुरु से परे और कोई चीज़ नहीं है। वह गुरु जिसने यह जगत् बनाया, प्रेममय है। मैं कहता हूं कि नफ़रत भी तो प्रेम है। अब आप कैसे मानेंगे कि नफरत प्रेम है? जब आप किसी व्यक्ति से नफरत करते हैं, तो नहीं चाहते कि उसके अन्दर बुराईयां हों। आप उसके साथ प्रेम कर रहे हैं। यह जगत् प्रेम के लिए बना है। मालिक को मिलने का एकमात्र रास्ता है प्रेम? उसकी पराकाष्ठा प्रेम की पराकाष्ठा है।

वह सद्गुरु जो परमतत्वाधार है, जगत् के अ दर व्याप्त है और हमारे अन्दर भी मौजूद है। उसने देखा कि मेरे अंश यहां आकर फंस गए हैं, तो वह स्वयं मनुष्य का चोला धारण करके इस जगत् में अपने अंशों को ढूंढने आया। तुम उसे ढूंढ रहे हो,वह तुम्हें ढूंढ रहा है। इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब जब धर्म की हानि होती है, प्रेम समाप्त होने लगता है और नफरत बढ़ती है, तब मैं अपने आपको प्रगट करता हूं। एक राजा था। उसका वज़ीर बड़ा भक्त था, तथा ईश्वर को मानता था। वह जानता था कि मालिक अपने भक्तों को जगाने के लिए स्वयं अवतार लेता है। एक दिन राजा ने कहा, "वज़ीर यह कैसे हो सकता है कि वह मालिक स्वय जगत् में आए। उसके तो बहुत सारे कर्मचारी होंगे। वज़ीर ने कहा, "महाराज ! मैं आपके इस

सवाल का जवाब अवश्य दूंगा।" वज़ीर ने राजा के पुत्र की शक्ल का एक पुतला बनवाया। वज़ीर ने राजा से कहा, "महाराज! चलिए! आज किश्ती की सैर करने चलें।" राजा चल दिया। जैसे ही किश्ती भवर के पास पहुंची, कि वज़ीर ने उस पुतले को पानी में फैंक दिया। राजा ने समझा कि मेरे बच्चे को फैंक दिया। राजा ने बिना सोचे समझे ही पानी में छलाँग लगादी और पुतले को बाहर ले आया। वजीर ने कहा, "महाराज! आप अपने पुत्र के पुतले को बचाने के लिए स्वयं कूद पड़े। आपने मुझसे तो नहीं कहा। जब कि मैं भी बैठा था।" इसी प्रकार वह मालिक हमारा पिता है, और वह स्वयं हो अ ता है जो तड़प अपने बच्चे के लिए पिता को हो सकती है, वह किसी और को नहीं हो सकती।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अगर इसका साधारण अर्थ लिया जाए, तो वह इस प्रकार होगा। इस जगत् में जब जब धर्म पर एवं सत्य पर अधर्म अथवा असत्य हावी हो जाता है, तब तब मैं स्वयं मनुष्य के रूप में अवतरित होता हूं।

मेरे एक इसाई विद्या गुरु थे। वह मुझे बड़ा प्यार करते थे। एक बार वह मुझे चर्च ले गए। उन्होंने बताया कि इसाई धर्म क्यों अच्छा है? ईसा ने कहा है कि मैं गुनाहगारों के लिए आया हूं, दुष्टों के लिए आया हूं। उन्होंने कहा कि भगवान श्री कृष्ण जी तो संहार के लिए आए थे। इसलिए जीजस क्राइस्ट का जो प्रेम का आदर्श

है, यह बहुत ऊंचा है। मेरे विद्या गुरु ने तो समझ लिया कि मैं पूरी तरह से इसाई धर्म को अपना लूंगा लेकिन मुझे इसाई होने की क्या जरूरत ? हमारे अपने धर्म में इसाई धर्म तो क्या, सभी धर्म मोजूद हैं। जब मेरे विद्या गुरु ने भाषण समाप्त किया तो मैंने कहा, "मैं कुछ कहना चाहता हूं।" उन्होंने मुझे आज्ञा दे दी। मैं स्टेज पर आ गया मैंने कहा, "अभी अभी मेरे विद्या गुरु ने बताया :

'परित्राणायसाधूनाम विनाशाय चतुष्टताम्'

मान लिया कि भगवान श्री कृष्ण जी दुष्कर्मों का नाश करने या संहार करने के लिए आए, मगर उन्होंने नवें अध्याय में कहा है :

अपिचेतो दुराचारो साधुरेव

जो दुष्ट हैं दुराचारी हैं मगर वह मेरे से ही प्रेम करते हैं, भजते भाव अनन्यभाव जो लगातार मेरे पर ध्यान लगाते हैं, वह साधु ही हैं।

इसमें मारकाट की बात नहीं है। यह उद्देश्य है परमतत्व आधार का। कृष्ण ने कहा :

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तब चार्जुन।

अर्थात् सद्गुरु बार बार अनेक रूपों में आता है। इस जगत् में सत्संगी भी अनेक रूपों में हैं। मैं सब को जानता हूं, मगर अर्जुन तू उनको नहीं जानता। यह गुरुमत की परम्परा ऋषियों के समय से चली आ रही है। वह अनेक रूपों में अवतार लेता है।

नाना विधि राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा॥

वह परमतत्व मनुष्य चोले में आकर अनेक प्रकार के खेल खेलता। करोड़ों राम हैं औ करोड़ों रामायण हैं।

इसलिए दातादयाल जी महाराज ने कहा है:

सन्त सतगुरु तुझको कहते हैं नहीं मैं जानता,
मेरे अनुभव में दया करूणा का तू भंडार है।

दया व करूणा का भण्डार तब होता है, जब वह मनुष्य के चोले में आता है। भाव अनुभाव सब मनुष्य के ही चोले में होते हैं। देवताओं के भाव अनुभाव नहीं होते। देवता तो निष्ठुरता से अपना काम करते चले जाते हैं। प्रेम की पराकाष्ठा के लिए तो वह मालिक मनुष्य के चोले में आता है। जिससे मनुष्य उससे प्रेम करने लगते हैं।

मेरे दाता शीश पर,
मेरे दया का हाथ रख।
तू हैं दानी दीन बन्धु,
जगत् का दातार है॥

उसकी दया तो हर वक्त मौजूद है। उसके लिए पात्र होना चाहिए।

फैज़ का दर है खुला,
वो बन्द नहीं हरगिज़।
शर्त ये है कि कोई,
मांगने सायल आये॥

कोई तड़पते हुए दर्देदिल से मांगने आये।

और वह तो दाता है, दानो है जगत का दातार है, सब कुछ देने के लिए तैयार है, मगर कोई लेते वाला तो हो। लोग कहते हैं कि सच्चा हद् गुरु नहीं मिलता, मैं कहता हूं कि सच्चा शिष्य नहीं मिलता। वह गुरु परमतत्वाधार जगत् के अन्दर भी मौजूद है और जगत के बाहर भी मौजूद है। जब वह इस जगत् में आया, तो पहले शिष्य बनकर आया।

पहले दाता शिष्य भया,
तन मन अरपा शीश।
पीछे दाता गुरु भया,
नाम दिया बक्शीश॥

पहले भी वह परमतत्व था और जगत् में लीला करने के बाद भी वह परमतत्व ही रहा। केवल बीच की अवधि में वह नाशवान परिवर्तनशील उसी प्रकार परिवर्तनशील नाशवान व्यक्ति बना, जिस प्रकार एक नाटक का पात्र अनन्त की गली से आता है, रंगमंच पर सान्त बनकर अभिनय करता है। और उसके बाद फिर अनन्त में चला जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व अव्यक्त के भंडार से निकलकर कुछ समय के लिए व्यक्त होतो है। और फिर अनन्त व्यक्तित्व में चला जाता है। भगवान श्री कृष्ण जी ने इसी तथ्य की व्याख्या करते हुए अर्जुन को कहा है:

अव्यक्तात व्यक्तया: सर्वे अर्थात पराप्रेमय अव्यक्त के भंडार से उसी प्रेम का आंशिक स्वरूप बनता है। इसो का आशय यही है कि हमें केवल अपने प्रीतम को ही लक्ष्य बनाना चाहिए। 'मुझे मेरा प्रीतम ही चाहिए। शरीर की परवाह नहीं, मन को परवाह नही और आत्मा के आनन्द

की भी परवाह नहीं इतनी तड़प के बाद 'पाछे दाता गुरु भया।" फिर वह उसका ज्ञान दाता; प्रेम दाता बनकर आया, तब 'नाम दिया बक्शीश'। नाम क्या है? नाम वह अवस्था है, वह हालत है, जहाँ पहुंचने के बाद 'तू' और 'मैं' समाप्त हो जाती है। प्रेमी और प्रीतम दोनों मिल जाते हैं। नाम राधास्वामी हालत का नाम है। 'नाम दिया बक्शीश' नाम कैसे दिया? यह नहीं कि आपने उसकी सेवा की, मुठ्ठीचापी की, इसलिए नाम दिया। अरे नाम तो उसने दया के कारण दिया। बक्शीश का अर्थ है कि तुम्हें एक प्रकार का दान दे दिया। नाम का दान सबसे बड़ा दान होता है, जिसे अभयदान भी कहते है। इसलिए पहले वह शिष्य हैं और गुरु मालिक है। लेकिन बाद में वह स्वयं मालिक बन जाता है। इसलिए हमारी परम्परा के अन्दर है कि :

शिष्य निवे गुरु को,
यह जानत सब कोय।
गुरु निवे शिष्य को,
बिरला जाने कोय॥

अगर कोई व्यक्ति गुरु का काम कर रहा है, और वह सतगुरु है, सत् के अन्दर रहता है, प्रकाश और शब्द में रह कर के सत् की अवस्था में रहता है, वह हर प्रकार के दुःखों से, निःस्पति से ऊपर उठ जाता है। उसके लिए न कोई अच्छा है और न कोई बुरा है।

कबीरा खड़ा बाज़ार में,
सबकी मांगे खैर।
न काहू से दोस्ती,
न काहू से बैर॥

सतगुरु अपने अनुभव को बांटता है। यह उसका स्वभाव है। उसको दया मुफ्त में नहीं मिलती। उसकी दया तब मिलती है जब आप उससे प्रेम करते हैं। प्रेम सवाल है और दया उसका जवाब है। इसीलिए वह परमतत्व आधार जगत् का दातार है। सब कुछ देने वाला है। वह सत् में रहता है। जब तक वह अपने शिष्य के अन्दर सत् को नहीं देखता, तब तक वह सतगुरु कैसा? इसलिए कहा है:

शिष्य निवे गुरु को,
यह जानत सब कोय।
गुरु निवे शिष्य को,
बिरला जाने कोय॥

जो असली अनुभवी होगा, वह अपने शिष्य के चरणों में सिर रखकर के कह देगा, कि "तू मेरे सतगुरु का स्वरूप है।" परमदयाल जी महाराज ने दातादयाल जी महाराज को कहा 'महाराज! मुझे वह गुरु बताओ जो प्रकाश और शब्द से परे है। उसका ज्ञान मुझे कैसे होगा।"? दाता दयाल जी महाराज ने कहा, "फ़कीर! मेरे पास कल आना।" दूसरे दिन परमदयाल जी महाराज अपने गुरु दातादयाल जी के पास गए। दातादयाल जी महाराज ने परमदयाल जी महाराज को एक कमरे में बैठा दिया। दातादयाल जी महाराज ने एक नारियल 5 पैसे, एक फूलों की माला ली। पहले उन्होंने परमदयाल जी महाराज को तिलक लगाया, माला पहनाई, नारियल और पांच पैसे हाथ में देकर अपना सिर परमदयाल जी के कदमों में रख दिया और कहा, "फ़कीर! तू इस युग का अवतार है, तू गुरु है। तू लोगों

का सत्संग कराया कर और नाम दिया कर।" गुरु शिष्य का ऐसा सम्बन्ध हमें कहीं भी दिखाई नहीं देता। दातादयाल जो महाराज ने एक शब्द में कहा है :

न मैं राम कृष्ण का सेवक,
ईश ब्रह्म नहीं जानूं ।
मैं तो नाम फ़कीर दिवाना,
सबसे बढ़कर मानूं ॥
जो फ़कीर मोहे दर्शन देवे,
अपना भाग्य सराहूं ॥
अपने तन के चाम की,
जूती पग फ़कीर पहनाऊं ॥

दातादयाल जी महाराज ने ऐसा क्यों कहा, क्योंकि वह स्वयं परमतत्व थे और अपने शिष्य के अन्दर भी उन्होंने परमतत्व को देख लिया था। मैंने जब 'सिद्ध सत पुरुष फ़कीर बाबा' किताब लिखी तो उसके तीन अध्याय परमदयाल जो महाराज के पास भेजे। परमदयाल जो महाराज ने ने मुझे खत लिखा शर्मा! मैं तीन महीने के दौरे के बाद वापस आया हूं। तेरे लिखे हुए तीन अध्याय पढ़े गए। मैं कहीं का कहीं पहुंच गया। अब मुझे यह विश्वास हो गया कि कि तेरी ज़ाते पाक से यह 'सत्यता का धर्म' दुनिया में फैलेगा, फैलेगा, फैलेगा। जो संस्कार दाता ने मुझे दिए थे वह तेरे द्वारा परिपूर्ण हो रहे हैं। अब मैं बहुत खुश हूं। अगर मैं इसी समय अपना चोला छोड़ दूं, तो मुझे कोई दुख नहीं होगा। एक अन्य पत्र मे लिखा, "शर्मा! तू इस वैसाखी पर अवश्य आना I am waiting for your Holiness? महाराज मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं अपना सिर आपके कदमों में रखता हूं। परमदयाल जो महाराज का

प्रेम देवो। ऐसा वही कर सकता है जिसने अनुभव कर लिया है। जब मैं आपको सद्गुरु रूप कहता हूं, तो ऐसे ही नहीं कह देता। मुझे आपके अन्दर साक्षात् सद्गुरु का रूप दृष्टिगोचर होता है। इसलिए सन्तमत की परम्परा के अन्दर गुरु शिष्य को सिर निवाता है। गुरु शिष्य को नहीं बनाता, बल्कि शिष्य गुरु को बनाता है। यह उल्टा मार्ग है। लेकिन सत्य तो यह है कि :

'मेरे अनुभव में दया करूणा का तू भंडार है।'

वह परमतत्व मालिक जब मनुष्य के चोले में आता है, तब वह दया और करूणा का भण्डार होता है। ऊपर बैठा हुआ अनामी परमतत्व हमारे काम का नहीं है। इसीलिए तुलसीदास जी ने कहा है :

वन्दौ गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि

प्रेम हमजिन्स से होता है। जब वह परमतत्व मनुष्य के चोले में आता है, तब हम उससे प्रेम करते हैं। प्रेम देवता से नहीं होता। इसलिए तुलसीदास जी ने गुरु के कमल रूपी चरणों को नमस्कार किया है। नमस्कार का मतलब है कि जैसे ही आप झुके, आपका अहंकार समाप्त हो जायेगा। यही झगड़ा विश्वामित्र में और गुरु वशिष्ठ में था। गुरु वशिष्ठ ब्रह्म ऋषि थे और विश्वामित्र ब्रह्म ऋषि नहीं थे। विश्वामित्र अधिक तपस्या करते थे, जिसके कारण वे रिद्धि सिद्धि में रहते थे। उनको राजऋषि कहा जाता था। विश्वामित्र वशिष्ठ को कहते थे कि तुम मुझे ब्रह्मऋषि कहो।" वशिष्ठ कहते थे कि तुम अभी ब्रह्म ऋषि नहीं बने हो,तो मैं कैसे कह दूं। इसी बात को

लेकर विश्वामित्र ने गुरु वशिष्ठ के पुत्रों को मार दिया, तथा नुकसान भी बहुत किया। एक बार गुरु वशिष्ठ ने अपनी पत्नी को कहा, "आप खाना बनाइये" पत्नी ने कहा, "महाराज ! घर में नमक नहीं है।" वशिष्ठ जी ने कहा, "हमारे पड़ोस में विश्वामित्र रहते हैं, उनके यहां से नमक उधार ले आओ।" पत्नी ने कहा, "महाराज वह तो हमारे शत्रु हैं। उन्होंने हमारे पुत्रों को मार दिया। हमारी गायों को नुकसान पहुंचाया। क्या मैं फिर भी उनके घर नमक लेने जाऊं।" गुरु वशिष्ठ ने कहा, "विश्वामित्र हमारे शत्रु नहीं हैं।" वह तो हमारे मित्र हैं वह विश्व के मित्र हैं। हमारा और उनका सिद्धान्त का मतभेद है। वह कहते हैं कि मैं उन्हें ब्रह्म ऋषि कहूं और मैं कहता हूं कि वे अभी ब्रह्म ऋषि बने नहीं हैं। इसी समय विश्वामित्र गुरु वशिष्ठ को मारने के लिए भारी पत्थर उठाए अंधेरे में उनके पीछे छुपकर खड़े थे। उन्होंने सोचा कि वह इस पत्थर से ब्रह्म ऋषि वशिष्ठ का खात्मा कर दें। जब उन्होंने ब्रह्म ऋषि वशिष्ठ के प्रेममय वचन सुने, तो उन्होंने पत्थर एक ओर फेंक दिया और अपने सिर को वशिष्ठ जी के चरणों में रख दिया। उनकी यह अहंकार रहित दशा को देखकर वशिष्ठ जी ने कहा, "मेरे प्यारे ब्रह्मऋषि विश्वामित्र उठो।" यह सुनने के विश्वामित्र ने कहा, बाद "आपने मुझे ब्रह्म ऋषि कहा ?" यदि आपने पहले यह कहा होता, तो मैं आपके पुत्रों को मौत के घाट न उतारता, और न आपका नुकसान करता।" वशिष्ट ने कहा, 'विश्वामित्र ! तब तुम ब्रह्म ऋषि बने नहीं थे। अब ज्यों ही झुके, तुम्हारा अहंकार हटा और तुम ब्रह्म ऋषि हो गए।"

जब आप पूरी तरह से झुकते हैं, विश्वास करते हैं, तो मालिक आपको ऊपर उठा लेता है। तुलसीदास जी ने

कहा है :

'बन्दौ गुरुपदकंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि'

नर के रूप में जब मालिक आता है, तब वह कृपा का सिन्धु होता है।

महा मोह तम पुन्ज जासु वचन रविकर निकर

सद्गुरु की क्या निशानी है ? सद्गुरु की वाणी को सुनने से आपके अन्दर जो मोह रूपी काला बादल है वह वैसे ही छिन्न भिन्न हो जाता है, जैसे सूर्य की किरणों से काला बादल छिन्न भिन्न हो जाता है। उसी प्रकार गुरु की वाणी से मोह समाप्त हो जाता है। तुम्हारा मोह समाप्त होते ही, तुम पाप पुण्य से ऊपर उठ जाते हो।

मेरे अन्तर में समाना,
मेरे सांसों साँस में।
तू है व्यापक यह समझ दे,
सच्चा जो अधिकार है ॥

हमारी यही इच्छा है कि मालिक हमारे अन्दर समा जाए। वैसे तो हम मालिक के अन्दर समाए हुए हैं, लेकिन मालिक की व्यापकता की समझ कब आती है, जब हम अपने आपको पूर्ण रूप से शरणागत कर देते हैं। प्रेम के अन्दर दो चीजें हैं : 1) प्रेम में अपने आपको भूल जाना 2) जिससे हम प्रेम करते हैं, वैसे ही तदरूप हो जाते हैं। सत्संग के चार दरजे होते हैं 1) सत्संगी पहली बार आते हैं और सत्संग के अन्दर दूर बैठ जाते हैं। केवल सत्संग की हवा खाता है, नज़दीक

नहीं आता। जैसे हरिद्वार के पंडे गंगा नहीं नहाते,, मगर वह गंगा की उस परिधि के अन्दर रहते हैं, जहां गंगा का प्रभाव है। हरिद्वार के कुओं में, नलों में गंगा का पानी है। इस पहले दर्जे को कहते हैं सालोक्य। 2) अब दूसरा दर्जा है कि सत्संगी गुरु के नज़दीक आ गया और उसे गुरु की याद भी आने लगी। जैसे आप गंगा के किनारे पहुंच गए और वहाँ की ठन्डी ठन्डी हवा से आपको शीतलता मिलने लगी। इस दर्जे को कहते हैं सामीप्य। 3) तीसरा दर्जा है कि सत्संगी को नाम लेते लेते इतना प्रेममय हो गया कि उसे हर जगह गुरु का रूप दिखाई देने लगता है। यह जीवन मुक्ति की अवस्था होती है। इसमें मैं समाप्त हो जाती है और जगह तू ही तू दिखाई देने लगता है। अब गंगा के किनारे आने के बाद आपका मन नहाने के लिए करेगा। आप कपड़े उतार कर गंगा में डुबकी लगाते हैं। आपको पानी के अन्दर आनन्द आता है। आप पानी में ओत-प्रोत हो गए अर्थात पानी का ही स्वरूप हो गए अर्थात् मैं का झगड़ा समाप्त हो गया और तू ही तू रह गया।

जब मैं था तब तू नहीं,
जब तू है मैं नाहि।
प्रेम गली अति सांकरी,
वामें दो न समाहि॥

सत्संगी तदरूप हो जाता है। जैसे मालिक किसी से साथ वैरभाव नहीं रखता, वैसे ही आपके अन्दर किसी से

वैरभाव, मित्रता शत्रुता नहीं रहती।

तू तू करता तू भया,
मुझ में रहो न हूं ।
बलिहारी तेरे नाम की,
जित देखूं उत तू"

इस अवस्था को सारूप्य कहते हैं। 4) अब चौथी अवस्था में व्यक्ति पानी के अन्दर डुबकी लगता है और बाहर नहीं निकलता, अर्थात् सत्संगी और मालिक एक हो जाता है, विलीन हो जाता है, इसे कहते हैं सायुज्य :

मेरे अन्तर में समाना,
मेरे सांसों सांस में ।
तू है व्यापक यह समझ दे,
सच्चा जो अधिकार है ॥

जब हमें इस बात का ज्ञान हो गया कि मालिक हर एक के अन्दर व्यापक है। सभी में मुझे उसकी झलक दिखाई देती है, तो मैं नफरत किससे करूं। नफरत करूं तो अपने आप से करूं। सदगुरु सत् में रहने वाला है। वह किसी से नफरत या भेदभाव नहीं करता। जहां भेदभाव आया, वहाँ प्रेम नहीं हो सकता।

आस रखकर गुरु कृपा की,
नित करो अभ्यास तुम ।
रात दिन छिन छिन तुम्हारा,
वह सदा रखवार है ॥

सन्तमत की यह विशेषता है कि इसमें ज़ुबानी जमाखर्च नहीं है। इसमें मेहनत करनी पड़ती है। अभ्यास करने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। मगर अभ्यास गुरु की आस लेकर करो। यदि आप किताबें पढ़कर करोगे, तो मुश्किल हो जायेगी। यहां पर करनी है।

यह करनी का भेद है,
नाहिं बुद्धि विचार।
कथनी छोड़ करनी करे,
तब पावे कुछ सार ॥

अभ्यास क्या है? अभ्यास गुरु से प्रेम करना है। जिस गुरु को तुमने आदर्श माना है, उस गुरु की कृपा से अभ्यास में उससे प्रेम करो। मगर अभ्यास रोज़ाना करना चाहिए :

आस रख कर गुरु कृपा की,
नित करो अभ्यास तुम।

दातादयाल जी महाराज ने अपने हर शब्द के अन्दर 'गुरु कृपा' पर ही अधिक जोर दिया है। क्योंकि गुरु की कृपा, गुरु के सत्संग के बिना अभ्यास करने से तुम्हें अनुभव भी होंगे और सिद्धि शक्ति भी आ जाएगी, लेकिन अभ्यास के बाद जब तुम ऊपर से नीचे आओगे, तो फिर तुम्हारा मन विचलित होगा। इसलिए सत्संगों को शुरू में, मध्य में और अन्त में भी गुरु के सत्संग की आवश्यकता होती है।

कर गुरु की संगत रात दिन,
नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से,
यम का शीश न भार ले॥

इन दो पंक्तियों में कितनी गारन्टी दी है। इसी प्रकार की गारन्टी भगवान श्री कृष्ण ने भी दी है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कहा 'अर्जुन! सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा। तुम्हें सभी रुकावटों से हटाकर अपने पास बुला लूंगा।' यही बात दादूदयाल जी महाराज कह रहे हैं।

'कर गुरु की संगत रात दिन' रात दिन गुरु की संगत का अर्थ है कि लगातार गुरु का ध्यान, गुरु से ही प्रेम करना है। लेकिन अन्धी भक्ति नहीं होनी चाहिए।

एक गुरु के दो शिष्य थे। एक शिष्य दायें पैर को दबाता था और दूसरा बायें पैर को दबाता था। बायीं टांग वाला शिष्य दूसरे शिष्य से कहने लगा 'मैं ज़रा बाहर जा रहा हूं, तुम मेरी बाईं टांग को मत छूना। यह कहकर वह चला गया। कुछ देर के बाद गुरु जी ने अपनी बायीं टाँग दाहिनी टाँग के ऊपर रख दी, जब बाहर गया हुआ शिष्य वापस आया, तो उसने देखा कि बायीं टांग दाहिने टांग पर है। उसे गुस्सा आया और उसने पत्थर मारकर गुरु जी

की बायीं टांग तोड़ दो। गुरु जी दर्द से तड़प उठे। दूसरे शिष्य को भी गुस्सा आ गया कि इसने मेरी दाहिनी टांग तोड़ दी और उसने भी पत्थर उठाया और गुरु जी की बायीं टांग पर दे मारा। गुरु जी स्वर्ग सिधार गए।

गुरु को याद करना, उसके कहने पर अमल करना जरूरी है। 'नर जन्म अपना सुधार ले' धार में मत जा, बल्कि राधा बन जा। सुधार का अर्थ है अच्छी धार। यदि धारा में बहोगे, तो दुनिया में रह जाओगे। जब आप धारा से राधा बनोगे, तब आपका सुधार होगा।

शीश दे तन मन को दे,
गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से,
यम का शीशन भार ले ॥

राधास्वामी अवस्था में रहने वाला सतगुरु तुम्हें क्या कहता है? 'शीश दे' तुम्हारे अन्दर जितने भी अच्छे, बुरे विचार हैं, सबको छोड़ दो। तन की सुध न रहे, मन की सुध न रहे और आत्मा के आनन्द की भी सुध न रहे। 'गुरु भक्ति रतन अमोल ले'। भक्ति रतन की कोई कीमत नहीं' है। उसके मिलने से तुम्हें सब कुछ मिलेगा।

राधास्वामी भेद बताया तुमको,
हिए तराजू तोल ले ॥
अब राधास्वामी अवस्था मे रहने वाला, मस्ती में

रहने वाला स्वयं सद्गुरु ने तुम्हें भेद बता दिया, अब तुम्हारी अपनी मरजी है कि उस पर चलो या न चलो। यह तुम्हारा नया कर्म होगा। तुम सब परमतत्व हो और परमतत्व के अन्दर संकल्प की स्वतन्त्रता होती है गुरु के कहने के बाद भी अगर तुम उसको नहीं अपनाते हो, तो यह तुम्हारा नया कर्म है।

छोड़ो ममता छल कपट चतुराई,
गुरु से नेह जोड़।
भक्ति उसकी कर,
वह सच्चा प्रेम का भंडार है॥

हर जगह उस मालिक की मौजूदगी का एहसास तब होगा, जब आप उससे सच्चा प्यार करोगे।

जहाँ आंख खोली नहीं तुझको पाया,
कहीं ज्योति था तू कहीं था तू छाया॥

जब तुम पूरा प्रेम करोगे, तब तुम्हें हर जगह दिखाई देगा।

कहीं होके परगट दिया,
सब को दर्शन।
कहीं छुप गया,
छुपके छवि को छुपाया॥

परमदयाल जो महाराज कभी कभी कहते थे कि मैं सत्य का अवतार हूं और कभी कहते थे कि मैं कुछ नहीं हूं। लेकिन अन्त में क्या कहा :

दया राधास्वामी की मुझ पर हुई अब ।
परमसन्त औतार धर के चिताया ॥

सतगुरु से सच्चा प्यार करने पर आप पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं ।

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी को सुमिर ।
राधास्वामी सर्व रक्षक सर्वदा हितकार है ॥

तीन बार राधास्वामी क्यों कहा ? शरीर में राधास्वामी, मन में राधास्वामी और आत्मा में राधास्वामी । हमारे रोम रोम में 24 घन्टे राधास्वामी हो ।

रोम रोम रग रग मेरी बोली
राधास्वामी राधास्वामी घुण्डी खोली ॥

अब आम आदमी कहेगा कि राधस्वामी को बार बार क्यों कहा है ? क्योंकि रोम रोम के अन्दर गुरु बसा हुआ है, अर्थात् उसका प्रेम बसा हुआ है । राधास्वामी की हालत मिल गई । राधास्वामी की अवस्था में, राधास्वामी की घुण्डी अर्थात् जड़ चेतन की ग्रन्थि को खोल दिया ।

कोटि कोटि करूं बन्दना,
अरब खरब दन्डौत ।
राधास्वामी मिल गए,
खुला भक्ति का स्त्रोत ॥

आम आदमी यह समझेगा कि दण्डवत करने से राधास्वामी रास्ते में चलते हुए मिल गए । लेकिन यह बात नही है । 'कोटि कोटि करू वन्दना' जब वन्दना की मेरा

अहंकार समाप्त हो गया। अरब खरब दण्डौत' 'राधा-स्वामी मिल गए' गुरु और शिष्य जब एक हो गए 'खुला भक्ति का स्त्रोत'। क्यों एक सतगुरु आगे वाले सतगुरु को काम दे जाता हैं,क्योंकि अगर तुम बागो का ऐसे हा पढ़ागे, तो तुम्हारो समझ में नहीं आएगो। तुम्हारी समझ में तब आएगो, जब सद्गुरु अनुभव के आधार पर व्याख्या करके तुम्हें समझाएगा।

राधास्वामो राधास्वामी राधास्वामी को सुमिर।
राधास्वामी सर्व रक्षक सर्वदा हितकार है॥

शरीर की राधास्वामी,मन की राधास्वामी और आत्मा की राधास्वामी। आप 24 घण्टे राधास्वामी की अवस्था में रहेंगे। आप किस प्रकार किसी से नफरत कर सकते हैं। क्योंकि सभी के अन्दर मालिक की झलक दिखाई देती है। आपका जो मालिक से परमतत्व से मिल जाने का, उसमें समा जाने का असली हित है, वह राधास्वामी की भक्ति से ही पूरा हो सकता है।

इन शब्द के साथ मैं आज का सत्संग समाप्त करता हूं और सच्चे दिल से चाहता हूं कि आप इस सत्संग से प्रेरणा लेकर पराभक्ति में रत हो जायें और आपका लोक और परलोक दोनों बन जायें।

सबको राधास्वामी।

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हिज होलीनेस
हजूर मानव दयाल जी
डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मांश, परमप्रिय
सत्संगियो,

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई

नवम्बर के मासिक संदेश में मैंने आपको 28 सितम्बर, 93 तक की सत्संग दौरे की सूचना दी थी, और यह भी कहा था कि आप सब मानव मन्दिर के मासिक संदेश को पढ़ने के लिए उत्सुक रहते हैं। कई स्थानों पर तो वहां के पोस्टमास्टरों ने भी कहा कि वे पहले स्वयं ही 'मानव मन्दिर' पत्रिका पढ़ते हैं। और फिर उसे जिनके नाम पर भेजा हुआ होता है, उन्हें पहुंचा देते हैं। मैं इस मासिक सन्देश के द्वारा उन सभी पोस्टमास्टरों को कहना चाहता हूं

कि वे अपना पता हमें भेज दें और हम उन्हें मानव मन्दिर पत्रिका हमेशा नि:शुल्क भेजा करेंगे।

पिछले मासिक सन्देश में सत्संग के महत्व के सिलसिले में मैंने आपको 'राधास्वामी' शब्द गाने की महिमा बताई थी। राधास्वामी नाम गाने का अर्थ राधास्वामी अवस्था को जीवन में उतारना है। मैंने आपको बताया था कि स्वामी जी महाराज ने इसी दृष्टिकोण को अनेक शब्दों में व्यक्त किया है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है :

'राधास्वामी गाय कर,
जन्म सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है,
मन अपने धर ले ॥'

दूसरे शब्दों में इसका भाव यह है कि हमें राधास्वामी अवस्था को अपने जीवन में उतारते हुए इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें परमतत्व में विलीन हो जाना चाहिए। यही हमारी निज अवस्था है, जाते पाक और परम धाम की अवस्था है जिसे अनुभव करने के उद्देश्य से ही हम इस सन्सार में जन्म लेते हैं। उसकी प्राप्त के लिए हमें शरीर, मन और आत्मा के अनुभवों से ऊपर उठ कर परा प्रेम की अवस्था में विलीन होना होता है। कबीर साहब ने इसी धारणा को अपने शब्दों में व्यक्त किया है क्योंकि यह अवस्था सांसारिक सारे अनुभवों से ऊपर की अवस्था है। इसलिए उन्होंने इस हालत को उनमुनि हालत

कहा है। कबीर साहब के शब्दों में :

'कह कबीर यह उनमुनि रहनी,
सोई प्रगट कर गाई ॥
सुख दु:ख से इक परे परम सुख,
सो सुख रहा समाई ॥'

यहां उनमुनि का अर्थ उत्-मुनी है, अर्थात ऊपर की ओर जाने की अवस्था है। जब ऐसी रहनी हो जाती है तो साधक को कुछ करने-धरने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। उस समय उसको कबीर साहब के निम्नलिखित शब्द का असली मतलब समझ में आ जाता है। परमदयाल जी महाराज ने मुझे पिट्सबर्ग, अमरीका में कबीर साहब का वह शब्द सुनकर कहा था :

'माला फेरूं न हरि भजूं,
मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मुझे भजे,
तब पाऊं विश्राम।'

वास्तविकता तो यह है कि मालिक हममें पूर्णतया नहीं रहता बल्कि हम मालिक में रहते हैं। इस बात की समझ आते ही व्यक्ति आठों याम परम सुख की अवस्था में रहता है। इस अवस्था का प्रभाव कभी भी हटता नहीं है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता के दूसरे अध्याय में यही उपदेश देते हुए कहा था :

'दुखेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतराग भयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥'

स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति वही है जो दुःख में दुःखी नहीं होता और सुख में फूल कर उन्मत्त नहीं होता। स्थिर बुद्धि अवस्था ही ब्रह्मी स्थिति कहलाती है। भगवान श्री कृष्ण के शब्दों में :

'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥'

हे अर्जुन इसी अवस्था को ब्रह्मलीन अवस्था कहा गया है। शरीर त्यागते समय सिद्ध योगी इसी अवस्था में रहता है, जिसके फलस्वरूप वह सीधा परमधाम को प्राप्त होता है।

सद्गुरु, सत्संग और सतनाम के तीन सोपान साधक को सहज ही इस अवस्था पर पहुचा देते हैं। जैसा मैंने पहले बताया है, सदगुरु वह है जो हमेशा सत् में रहता है। इस जगत् में अधिकतर प्रचारक गुरु ही कहलाते हैं। चाहे उन्होंने सुरत-शब्द अभ्यास से जीवनमुक्ति ही क्यों न प्राप्त कर ली हो, फिर भी वे परम अवस्था से वंचित रहते हैं। बल्कि सिद्धि शक्ति प्राप्त होने के कारण उनमें अहंकार आ जाता है। और अहंकार ही जीव और परमतत्व के बीच एक बड़ी गहरी खाई है। यह अहंकार इतना सूक्ष्म होता है कि बड़े से बड़े ज्ञानी साधक भी इसके शिकार हो जाते हैं। कोई ही कोई बिरला ज्ञानी जिसका ज्ञान व्यापक प्रेम में बदल जाता है, परम अवस्था को प्राप्त होता है। दाता दयाल जी महाराज की वाणी है :

'लीला अगम अपार अमाया,
अदभुत् क्या कोई जाने ।
ऋषि मुनि योगी पार न पावें,
ज्ञानी नहिं पहिचानें ॥'

जगत् की यह लीला अगम है अर्थात् इसका कोई अन्त नहीं, वारापार नहीं, और यह विश्वव्यापी माया से भी परे है। ऋषि, मुनि और योगी इसकी तह तक नहीं पहुंच सकते और ज्ञानी इसे पूरी तरह नहीं पहचानते। इस सम्बन्ध में ब्रह्मऋषि वशिष्ठ और राजऋषि विश्वामित्र की परस्पर स्पर्धा का विवरण देना यहां आवश्यक है। यह पौराणिक गाथा है जो गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण में परोक्ष रूप से बताई है। वशिष्ठ और विश्वामित्र हमारे इस मनवंतर के त्रेता युग में रहे थे। राजर्षि विश्वामित्र वशिष्ट से आग्रह करते कि वे उन्हें ब्रह्मर्षि कह कर सम्बोधित करें। किन्तु वशिष्ट जी उन्हें ऐसा इसलिए नहीं कहते थे कि विश्वामित्र अपनी सिद्धि-शक्ति के अहंकार से मुक्त नहीं हुए थे। इसी अहंकारवश विश्वामित्र ने वशिष्ट की लाखों गौवें खत्म कर दीं और उनके आठ पुत्रों को भी मार डाला। फिर भी वशिष्ट विश्वामित्र का सम्मान करते हुए भी उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहते थे। एक दिन रात के समय ब्रह्मर्षि वशिष्ट ने अपनी पत्नी से कहा कि वे भोजन बनावें। उनकी पत्नी ने उत्तर दिया, "भोजन तो मैं तैयार कर दूं, पर नमक घर में नहीं है।" ब्रह्मर्षि वशिष्ट ने कहा, "कोई बात नहीं, विश्वामित्र हमारे पड़ोसी हैं, उनके घर से नमक उधार ले लो।" पत्नी ने चौंक कर कहा, "यह कैसे हो सकता है? उन्होंने हमारी सम्पत्ति नष्ट कर

दी और सन्तानों को मार डाला। भला मैं उनके घर से नमक कैसे मांग सकती हूं ?" वशिष्ट ने कहा, "नहीं, उनके प्रति तुम्हारा यह भाव उचित नहीं। वह तो सारे विश्व के मित्र हैं, जगत् कल्याण के लिए ही उन्होंने गायत्री मन्त्र की रचना की है। मेरा उनका मतभेद केवल सिद्धान्तों का है, वे भक्ति के मुकाबले सिद्धि शक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं, जबकि भक्ति का दर्जा श्रेष्ठ है। जब उनका यह अहंकार उनके हृदय से समाप्त हो जाएगा तो वे स्वत: ब्रह्मर्षि हो जायेंगे। मेरा उनका व्यक्तिगत रूप से कोई मतभेद नहीं।

राजर्षि विश्वामित्र उसी समय रात के अन्धेरे में वशिष्ट को जान से मार डालने के विचार से हाथों में पत्थर लिए उनकी कुटी के पीछे खड़े थे। ज्यों ही उन्होंने वशिष्ट के मुख से अपने प्रति इतने उच्च प्रेममय शब्द सुने, हाथ का पत्थर एक तरफ फैंका और जा कर अपना सिर वशिष्ट के चरणों में रख दिया। उसी समय ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने उन्हें उठा कर अपने हृदय से लगा लिया और कहा :

"हे ब्रह्मर्षि विश्वामित्र उठो।"

वशिष्ठ के मुख से ये शब्द सुनते ही विश्वामित्र उठ कर बोले : 'आप ने मुझे ब्रह्मर्षि कहा ?" वशिष्ट ने कहा, 'हां, मैंने तुम्हें ब्रह्मर्षि कहा, क्योंकि तुम में सिद्धि शक्ति का अहंकार समाप्त हो गया, और तुम अब ब्रह्मर्षि हो।" विश्वामित्र ने कहा : 'यदि आपने यही शब्द पहले ही कहा होता तो मैं आपकी इतनी हानि न करता।" इस प्रकार दोनों ऋषियों ने विश्व में एक मिसाल कायम कर दी जिससे

यह साबित हो जाता है कि प्रेम में भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं होता।

जैसा मैंने पहले बताया है कि 28 सितम्बर तक मैं मानवता मन्दिर पहुंच गया था, अक्टूबर महीने में अधिकतर समय दैनिक दिनचर्या में बीता। मासिक सन्देश लिखा गया। 24 अक्टूबर को दिल्ली दशहरा सत्संग कार्यक्रम निश्चित था। उससे पहले हर वर्ष की तरह मोदी नगर में सत्संग हुआ। दशहरा से एक दिन पहले मैं सालवान पब्लिक स्कूल पहुंच गया। वहां दूर दूर से सैंकड़ों सत्संगी आ पहुंचे थे। श्री शिवदत्त सलवान तथा उनकी सुयोग्या सह-धर्मिणी श्रीमती राज सलवान इस अवसर पर सलवान स्कूल को बड़े सुन्दर रूप में सुसज्जित करते हैं। कई वर्षों से उन्होंने यह अनुभव किया कि स्कूल का सभा भवन छोटा पड़ता है, इसलिए उन्होंने एक बहुत बड़ा सभा मंडप खेल के मैदान में निर्माण कराया है, और उसके आगे शामयाना लग जाने से दस हजार से अधिक सत्संगी बैठ सकते हैं। सलवान परिवार की यह सेवा और परम दयाल जी महाराज के प्रति यह अगाध श्रद्धा अपने आप में एक महान् आदर्श है। मैं मैं सच्चे दिल से चाहता हूं कि उनकी यह श्रद्धा भावना सभी सत्संगियों को प्रेरणा प्रदान करे।

24 अक्टूबर को दशहरा सन्त सम्मेलन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ और 29 अक्टूबर को मैं अमरीका को रवाना हो गया। लंदन से हमने अमरीकन एयर लाइन द्वारा न्यूयार्क पहुंचना था। हमारा वायुयान ठीक समय पर रवाना हुआ किन्तु न्यूयार्क में भीषण आंधी-तूफान के कारण हमारा वायुयान न्यूयार्क न जा सका। न्यूयार्क की सलाह के मुताबिक

हमारा वायुयान केनेडा के माँण्ट्रियल हवाई अड्डे की तरफ भेज दिया गया। अभी हमारा वायुयान मॉण्ट्रियुल पर उतरा नहीं था कि उसका अगला इञ्जन फेल हो गया। वायुयान के चालकों की कोठरी में अन्धेरा छा गया। मुसाफ़िरों के कक्ष में रोशनी थी। वायुयान के चालकों ने मुसाफिरों को यह कह कर ढाड़स बंधाया कि'आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें। नीचे आपकी सुरक्षा के लिए सारी व्यवस्था हुई 2 है। हमारा विमान आराम से उतर जाएगा।' जब हमारा विमान हवाई अड्डे पर उतरने हो वाला था कि उतरने से पहले ही दूसरा इञ्जन भी फ़ेल हो गया। मैं अपने सद्गुरु की याद में मग्न रहा। मुझे ऐसा लगा कि परमदयाल जी महाराज ने अपने हाथों में विमान को लेकर उतार दिया।

हमारा हवाई जहाज दूसरे मिनट हवाई अडडे पर उतर गया। मैंने उसी हवाई अड्डे से ग्रीन बे विस्कांसिन में श्री अजीत कुमार को टेलीफोन किया कि प्रोग्राम के मुताबिक मुझे सीधा ग्रीन बे ही जाना था। अजीत कुमार जी ने मुझे फोन पर कहा, 'बहुत अच्छा हुआ कि आप ने मुझे फोन कर दिया। यहां पर तो आप का सत्संग आप की सुविधा के मुताबिक आयोजित कर दिया जाएगा। मुझे अभी अभी क्लियर वाटर, फ्लोरिडा से श्रीमती स्थबुश का फोन आया है। सम्भवत: आप भूल गए कि आप को क्लियरवाटर के विख्यात Temple of Living God जीवित ईश्वर के मंदिर) में सत्संग देने थे। आप को देर हो जाने के कारण एक सत्संग कैंसिल हो चुका है। अत: आप से निवेदन है कि आप सीधे क्लियर वाटर पधारें। इस सम्बन्ध में श्रीमती

रुथ बुश ने पहले से ही न्यूयार्क से क्लियर वाटर की सीट मेरे लिए रिज़र्व करा ली थी। इसी प्रोग्राम के अनुसार मैं क्लियर वाटर पहुंच गया। रात्रि-विश्राम के बाद दूसरे दिन जीवित ईश्वर के मंदिर में साधना शिविर लगा। इस शिविर में आने वालों को 100 डालर देना था जो उन्होंने मंदिर को दे दिया। सभी सत्संगियों ने बड़े ध्यान से साधन की महिमा के सम्बन्ध में मेरा सत्संग सुना। उसके बाद अपने शकूक निवारण किए और दोपहर के भोजन से पहले सभी ने समाधि लगाई। इसके बाद 2 बजे से 5 बजे सायंकाल तक पुन: सत्संग हुआ और 4.30 बजे सभी सत्संगी गहन समाधि में बैठ गए। ठीक 5 बजे हम वहां से रुथबुश के घर की ओर चल दिए। उसी दिन प्रात:काल हमें नाश्ते के बाद श्रीमती वायलेट कैनेडी के निवास स्थान पर हडसन शहर में सत्संग के लिए जाना था। प्रात:काल नाश्ते पर श्री कर्नल एल्विन ऐशले और उनकी पत्नी गेल ऐशले रुथबुश के घर पर नाश्ते के लिए आए। उन दोनों के अस्वस्थ होने के कारण वे अपने घर चले गए। हम ठीक समय पर करीब 35 मील दूर श्रीमती वैलेट कैनेडी के निवास-स्थान पर हडसन पहुंच गए। श्रीमती वैलेट कैनेडी एक सिद्धिप्राप्त अमरीकी आचार्या हैं और निस्वार्थ भाव से अपने केन्द्र पर सैंकड़ों लोगों को सत्संग दिया करती हैं और साधना में उनका मार्गदर्शन करती हैं। उनके निवासस्थान पर हम करीब 3 घण्टे ठहरे जिस दौरान सत्संग और समाधि आयोजित हुए। सायंकाल 5 बजे तक हम श्रीमती रुथबुश के यहाँ पहुंच गए। यहाँ पर रात्रि के भोजन के लिए ऐशले परिवार और लेमांट परिवार के और

श्रीमती जूडी लोमांट उपस्थित थीं।

मैंने आप को ऐशले परिवार के बारे में काफी सूचना दी है। कर्नल ऐशले हमेशा 100 इयर प्लग (कानों को रूंधने के उपकरण) देते हैं जिनके प्रयोग से बहुत जल्द और आसानी से सुन्न समाधि लग जाती है। लेमाण्ट परिवार के बारे में भी मैंने आप को कई बार सूचना दी है। यह परिवार सन् 1976 से ही परमदयाल जी महाराज से सम्बद्ध है। ज्यूडी के पति माइकेल लेमाण्ट घरों के अन्दर तालाब निर्माण का काम करते हैं। इससे उनको करोड़ों डालर की आय होती है। उनका विश्वास है कि उनकी समृद्धि का कारण परमदयाल जी महाराज का आशीर्वाद है। उनके घर में एय बहुत बड़ा तैरने का तालाब है। उसी के किनारे पर उन्होंने परमदयाल जी महाराज के निवास के लिए एक भवन बना रखा है जिसमें दो कमरे और दोनों को जोड़ने वाला एक बरामदा है। परमदयाल जी महाराज अपने कमरे में सो गए और डा. परसराम अग्रवाल उनके पास गद्दे पर सो गए। मैं प्रातःकाल जागा। देर से उठने के कारण मैं अपने कमरे के बरामदे में साधन के लिए बैठ गया। इसी दौरान मुझे अहसास हुआ कि परमदयाल जी महाराज उठ गए और डा. परसराम से बात करने लगे। परमदयाल जी महाराज ने श्री परसुराम को कहा, "तू फ़कीर चन्द हैं, मैं परसराम हूं! तू फकीर चन्द है, मैं परसराम हूं!! तू फकीरचन्द है, मैं परसराम हू !!!" मैं नहीं कह सकता कि डा. परसराम जी ने उनकी इस गूढ़ गिरा को समझा या नहीं! पर मैंने तुरत अनुभव किया कि परमदयाल जी महाराज के

अगाध प्रेम में सद्गुरु और सत्संगी एक हो जाते हैं।

मेरे प्यारे सत्संगियो! मैंने यह सब कुछ इसलिए लिखा है कि आप को परा प्रेम की प्रेरणा मिले, आप का परिवार सुखी रहे आपका समाज उन्नति करे, और आप न केवल भारत मे ही, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में पराप्रेम की मिसाल कायम करें।

इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावनायें भेजता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि आपका लोक-परलोक दोनों बन जाए।

सब को राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव

परम सन्त हजूर परमदयाल पण्डित फ़कीर चन्द
जी महाराज के अनमोल विचार

मनुष्य और पशु की पहचान

याद रखिये, भोजन, निद्रा सुख, जीने की कामना तथा भय की भावना को भोगने में मनुष्य और पशु समान हैं। यदि मनुष्य और पशु में कोई अन्तर है तो मात्र यह कि मनुष्य समझ बूझ रखता है, उसे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है तथा वह उसे क्रियात्मक रूप देने की विधि और योजना सोच सकता है। पशु को यह सब उपलब्ध नहीं। कर्त्तव्य और धर्म की भावना से रहित मनुष्य पशु समान है। मनुष्य का 'मानव धर्म' अथवा 'जीओ और जीने दो' का सिद्धान्त सब से श्रेष्ठ है, जो कि मनुष्य को 'सर्वश्रेष्ठ सृष्टि' कहे जाने का अधिकार देता है तथा मनुष्य और पशु में अन्तर को विशिष्टता को व्यक्त करता है।

आध्यात्मिकता में प्रवेश का अधिकारी वही व्यक्ति है जो सच्चे अर्थ में मानवता के नियमों का पालन करता है। कहा गया है :

फ़रिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें होती है मेहनत ज्यादा॥

मानव वही है जो 'अतिमानसिकता' प्राप्त कर चुका है; पुरुषोत्तम बन चुका है। मनुष्यता 'सर्वोच्च मानवता' है, पशु से मानव बनना है !

मनुष्यों के प्रकार :

प्राकृतिक दृष्टि से मनुष्य के विभिन्न प्रकार बताना कठिन कार्य है और लम्बी कहानी है। समझाने के लिए हम मनुष्यों के पांच प्रकार (वर्ग) निर्धारित करके स्पष्ट करने का यत्न करते हैं :

1. महान नीच :

इस वर्ग में वे मनुष्य आते हैं जो दूसरों को हानि तथा कष्ट पहुंचाने में जुटे रहते हैं। झगड़ा और फ़साद खड़ा करना उन की व्यक्तिगत विशेषता होती है। इस काम में उन्हें एक प्रकार का सुख अनुभव होता है, आनन्द और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है भले ही इस काम में उन्हें कितनी भी हानि और कष्ट झेलने पड़ें। ऐसे व्यक्तियों को शासन का डण्डा ही संयमित रख सकता है।

2. दूसरे प्रकार के मनुष्य वे होते हैं जो अपने ही लाभ को महत्व देते हैं चाहे हो उस की प्राप्ति में उन्हें दूसरों को कितनी भी हानि क्यों न पहुंचानी पड़ जाए।

3. तीसरे प्रकार के मनुष्य वे हैं जो नितान्त स्वार्थी तथा अपने ही हित साधन के इच्छुक होते हैं। वे अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं चाहे इस से दूसरों का भला हो

या बुरा, इस बात से उन्हें कोई लगाव नहीं होता।

4. चौथे प्रकार के लोग वे हैं जो दूसरों का भला तो चाहते हैं परन्तु उनकी यह इच्छा रहती है कि इस काम से स्वयं उन्हें भी लाभ हो। मात्र दूसरों की भलाई में उन्हें कोई रूचि नहीं होती। अपने कर्मों का फल वे साथ ही चाहते हैं।

5. पांचवें प्रकार के वे प्रशंसनीय मनुष्य हैं जिन्हें देवता कहा जाता है। उनके जीवन का ध्येय होता है संसार में शांति और समृद्धि लाना। भले ही इस काम में उन्हें कितना हानि और कष्ट झेलने पड़ें, नेकी और भलाई करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वे न उपकार किया जताते हैं और न प्रत्युपकार की कामना रखते हैं। ऐसे पुरुषों को ही पुरुषोत्तम अथवा सच्चे अर्थों में मानव कहा जाता है। वे धन्य हैं। यदि ऐसे मनुष्य संसार में न आते तो यह संसार शोकागार बन जाता।

खेद ! कि संसार में कोई (सच्चा) मानव न रहा।

यदि किसी व्यक्ति से यह पूछा जाए कि तुम कौन हो तो उत्तर मिलेगा, "मैं पंजाबी हूं', 'बंगाली हूं', 'मद्रासी हूं', 'अंग्रेज हूं' 'अमरीकन हूं', 'मुसलमान हूं', ईसाई हूं' इत्यादि उत्तर मिलेगा। हिन्दुओं में, 'आर्यसमाजी हूं', 'सनातनधर्मी हूं' ऐसे उत्तर मिलेंगे।

आज तक यह उत्तर सुनने में नहीं आया कि कोई आदमी दिल पर हाथ रख कर कहे, "मैं मानव हूं"। भला, यह उत्तर क्यों नहीं मिलता ? कारण यह है कि हम

ने कभी अपने विषय में सोचा ही नहीं, ध्यान ही नहीं किया कि हम मानव हैं। कभी हम मनुष्य बने ही नहीं, मानव बनने का प्रयास ही नहीं किया। हमने मनुष्य का शरीर अवश्य धारण किया है परन्तु इस पर बहुत से आवरण ओढ़ लिए हैं—देश के, सम्प्रदाय के, रंग के, जाति के, कुल गोत्र आदि के। इन आवरणों के बीच से मनुष्य का वास्तविक रूप दीखता ही नहीं। मानवता बेचारी दब कर रह गई है। स्वार्थी लोगों ने अपने निजी मान और धन के लिए इन आवरणों को और घना बना कर मानवता को अन्धेरे कोने में भू-समाधि दे दी है (दफ़ना दिया है)।

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़क़ीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला काँगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

परमपुरुष पूर्णधनी सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनैस हजूर मानवदयाल डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का वसन्त दौरा प्रोग्राम 1994

तारीख	कार्यक्रम	स्थान
2.2.94	होशियारपुर से दिल्ली को प्रस्थान	
3.2.94	दिल्ली से नागपुर को प्रस्थान ए.पी. एक्सप्रेस द्वारा	
4.2.94	विश्राम	श्री आर.डी. कोठारी 82, केनाल रोड, रामदास पेठ, नागपुर।
5.2.94	सत्संग प्रात: 9 से 11 बजे तक सायं प्रस्थान अहेरी को	
6.2.94	अहेरी आगमन एवं विश्राम	श्री व्यंकटेश—
7.2.94	सत्संग प्रात: 9से 11 बजे तक तथा सायं 5 से 7 बजे तक	गण मुकुलवार अध्यक्ष, मानवता परिषद, अहेरी
8.2.94	सत्संग लगाम	
9.2.94	आशीर्वाद सत्संग अहेरी प्रात: 9 से 11 बजे तक। सायं प्रस्थान निजामाबाद	
10.2.94	सत्संग निजामावाद प्रात: 9 से 11 बजे तक	
11.2.94	„ आरमूर प्रात: 9 से 11 बजे तक	

12.2-94	वेमलवाड़ा	
13.2.94	करीमनगर सत्संग सायं	
15.2.94	हनमकोंडा सत्संग प्रात: 10 से 12 बजे तक, सायं 5 से 7 बजे तक	राधास्वामी जनरल सत्संग सभा, राजपूतवाड़ी हनमकोंडा वरंगल (आं. प्र.)
16.2	,,	,,
17.2.94	,,	,, दन्तालपल्ली सत्संग
18.2.94	के. समुद्रम सत्संग प्रात: 9 से 10 बजे तक	
19.2.94	प्रस्थान हैदराबाद को एवं विश्राम श्री मदन लाल	
20.2.94	सत्संग प्रात: 9 से 12 बजे तक, सायं 5 से 8 बजे तक	भगवान व्यास, न० 15.11.442
21.2.94	,, ,, ,, ,,	फीलखाना
22.2.94	,, ,, ,, ,,	हैदराबाद (आं.प्र.)
23.2.94	,, ,, सायं प्रस्थान	फोन नं. 557235 दिल्ली
25.2.94	वापसी होशियारपुर।	

नोट 1 विशेष परिस्थितियों में प्रोग्राम बदला जा सकता है

2 अगले सत्संग केन्द्रका प्रतिनिधि पिछले केन्द् पर हजुर महाराज को लेने अवश्य आएगा।

शोक समाचार

सत्संगी जन को बड़े दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि पं. नारायणदास डोगरा के बहनोई श्री ताराचन्द जो डोगरा, निवासी कमालपुर, होशियारपुर, दिनांक 5-11-93 को पोलोक सिधार गए। श्री तारा चन्द डोगरा अपने सम्पूर्ण परिवार सहित परमदयाल जी महाराज के समय से ही सत्संगी तथा मानवता मन्दिर के प्रेमी भक्तों में अग्रणी रहे थे। परमसन्त हजूर मानवदयाल जी महाराज के प्रति डोगरा परिवार की श्रद्धा-भक्ति आदर्श,तथा मन्दिर के प्रति सेवा अनुकरणीय रही है।

मानवता मन्दिर परिवार श्री तारा चन्द डोगरा के परिवार की इस दु:खद बेला में, अपनी सम्पूर्ण सम्वेदनाओं और सहानुभूतियों सहित, उनके साथ रहते हुए, मालिके कुल राधास्वामी दयाल से सच्चे दिल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिरशांति प्रदान करें तथा उनके शोक संतप्त परिवार को इस महान् क्षति के सहन करने को शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

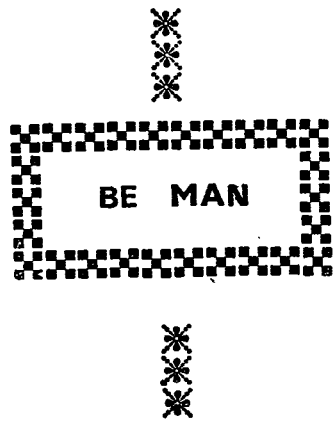

Monday, 10th January, 1994

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

Reverence And Faith

SHRADHA AND VISHWAS

Data Dayal Maharshi Shivbrat Lal Varman Ji Maharaj

A child is walking, holding the cloth or dress of his mother, and the mother is looking towards her dear child constantly. The child closes his eyes, but is still walking with the support of his mother. The road is uneven and there are stones lying on the path. Whenever the mother sees a stone, she takes care of the child more carefully, so that he may not fall or be hurt. How can he be hurt, how can he fall when the unselfish deep love of the mother is protecting him ? The mother cannot turn her eyes away from the child even for a second. The conscious string of the child is still connected with the heart of the mother, Although the navel cord was cut off from his mother at the time of his birth, yet mentally that navel has not been cut off. The child may be

careless, while walking, but the mother is not. She is very attentive. Child may seem careless towards his mother, but in reality mother is his only ideal and he has firm faith in him. When a serpent or lion or any danger appears before him, he at once jumps into the lap of his mother without any hesitation. He cannot even imagine that there can be anything greater or more powerful than his mother. He never measures the strength of his mother and believes that she is great. He totally belongs to his mother and mother belongs to him. There is an unbroken bond of love and faith between the two. His litile innocent mind is not capable of thinking that anything can be greater than his mother. He cannot and does not want to think that there can be anything more important than his mother. His mother is the complete or whole world for him. He does not go beyond this lowable state. Nobody an earth has the power to explain what kind of bondage keeps then so close.

The lovers, or devotees of God live in the same state as the child quoted above, They are the children of God and God is their mother. Whenever they are in trouble, they un towards God for refuge and the compassionable Lord also runs towards His devoted children

to protect them. The lovers of God are never attracted by worldly comforts or material things. God is their ideal, their everything. They cannot think beyond God. The child has a terrible boil on his body. He needs a surgery to remove that boil. The mother wants that the child should undergo that surgery, but the child is scared of the surgery. He clings to his mother for protection. But the mother is determined that the child should go for surgery. The child knows that his mother is determined. He is scared and wants that the surgery should be avoided, but even then he doesn't run away from his mother, but sticks to his mother's lap.

The surgery is performed successfully, the child suffers terrible pain. He cries bitterly, but even in this complex situation, he is not angry with his mother, who compelled him to suffer this pain. He doesn't complain against her or show his dissatisfaction against her, Even if sometimes mother beats him, spanks him, even then he doesn't run away from his mother. Mother is the entire world for him, the lap of his mother is the center of his inspiration and protection. In the same way, the true lovers of God play in the lap of mother God and feel protected in His shelter.

The child is a great teacher to teach the spiritual Truth. Nobody can teach you the lesson of firm faith than a child. He should be considered a true guide, a preceptor and a Guru in spiritual awakening. He is pure hearted, simpleminded and honest. He is so influenced by his mother and loves her with all his heart. Even if his mother beats him and is angry a with him against his mother. The child can never give up his association with his mother, nor does the mother have the power to disassociate from him.

The reverence of the child towards his mother is something great, which can never be stopped by anyone in this world. He may be loved and pampered by scores of his relatives, friends of the family and acquaintances but he never identifies himself with anybody except his mother. He cannot tolerate anything or any situation, which comes between him and his mother.

The child cannot distinguish between cleanliness and uncleanliness, but the mother does. But when the child is besmeared with mud and runs towards his mother for shelter, the mother who has put on a very expensive, brand-new Silken Sari, seeing her child crying takes him in her lap without caring for her expensive sari, which she dearly loves. Why does

she do so ? It is because she loves the child more than anything else.

The mental power of small children is very strong. People who associate with childrey behave like children and become pure of heart. Even very old people, being associated with the company of children act like children. The mother of course is influenced by her child. The child thinks and believes that he totally belongs to her and she totally is his.

The true devotee should also totally belong to God and must believe that there is no one in this world who loves him more than God and God loves him too. The love is not one sided, or one way affair. Whatever behaviour you adopt towards Him, He will reciprocate in the same way.

People want to test the Master. They argue and debate whether God is omnipotent or not. You see that the child has no such illusion about his mother. He never cares whether she posses some qualities or not. He loves her unconditionally. His love is unselfish and pure. This much knowledge that his mother belongs to him is more than sufficient for the child similarly, a true devotee must be contented that God is his mother and be belongs to Him. The

innocent little child never thinks that he is the inheritent of the power of his mother, similarly a devotee should claim to be omnipotent like God. Only those persons enter into argument and debate, who don't have love and faith. Look at the behaviour of a dog, who loves his master. He never cares whether his master is powerful or weak. He only knows that he is his master, for whom he can sacrifice even his life. A true devotee does not waste his time wander-here and there. He wanders in the company of God, his Master, like a faithful dog and ultimately attains his goal. The bookish knowledge doesn't do any good unless you practice it in your daily life.

An aspirant should go to the refuge of his master as a true devotee and bow down to him. He should perform his duty meticulously and leave the rest to the Lord. As long as a person is not true, pure of mind, he will never be worthy of becoming the beloved o God.

Faith is the strongest foundation of thought, which can move mountains. You can ridicule blind faith, because you are unaware of the power of thought. If you have no faith (call it a blind faith) in God there is no use of praying even day and night. Pray to God not for getting bread and butter

only, but pray to Him for His Grace and compassion.

Pray continuously, your mind will become pure with every prayer and you will begin to have faith that God is always with you. With the strong condition and faith the vision of the light of God will be experienced by you. You should think of your ideal day and night. But it seems to be difficult. Make it your habit to think of your ideal and gradually you will be able to fix your mind at one point. Your ideal is not far away from you. He is within you. He is always in your body and mind. You cann't see Him, because your attention is not fixed on Him. If you fix your attention on Him, you will be able to see Him everywhere. Your attention would be fixed on Him only by regular prayers gradually.

Reverence and faith have great importance. Just as you can buy any thing you need if you have money in your pocket, similarly you can accomplish anything in this world, when you have reverence and faith. Reverence and faith make your will power strong, you beeome courageous, you never frustrated because you feel the presence of the Lord all the time.

When you People who find faults with the action of other, you hould consider that they have no reverence and faith. It means that they don't have faith in the existence of God, the Lord.

A child is afraid of surgery. He wishes that the surgery should not be performed. He shouts and cries and quarels with his mother, is compelling him to under go a surgery. But even then he can never imazine doing any harm to his mother. He has no ill will against her. Similarly trne devotees are afraid of the worldly comflexities in the beginning. They pray to God that they may be ridden from those snfferings, but never complain against God or never lose faith in His existence. But after sometime devotees begin to rea ize that anything happens because of the will of God and they are not frustrated even in suffering.

Don't try to find faults either in God, or in yourself or others because of frustration. You have come in human garb, you have to live this life and make all round progress. Sometimes worry and frustration prove beneficial and they put you on the right path. Prosperity often shuts the doors of progress and poverty gives you the strength to struggle. The will of God is hidden in st ffering. So always have

trust and unshakeable faith in Him. If you are in trouble, try to forget that you are in trouble. Forget about the trouble, because it is not the object to remember, the only thing that you have to remember is the name of the Lord.

I have gained more from the enemity of my enemies rather than from the friendship of friends. At first I used to doubt my enemies. But afterwards I came to realize that they were my real friends. Had they not blamed and defamed me, I would not have advanced towards spiritualism successfully.

Try to reform your opponents with love. If you cannot do this become indifferent towards them. Give the positive idea to your mind that even the socalled opponents will prove beneficial in some way or the other. When you face defficulties, pray to the Lord. He will difinitely show His compassion to you, because He is so compassionate. Don't be depressed. Make it your habit to pray to the Lord for His mercy and compassion.

We suffer because of our ignorance. If your vision becomes clear and you rise higher toward spirituality, you will certainly be able to realize that every good or bad thing that happens has a specific reason.

When you realize this philosophy, you will never get depressed or frustrated. Have faith in Him. Reverence and faith, and Upasana (worship) and Bhakti (devotion) are very important for success in worldly life as well as for spiritual advancement.

A WORD TO CANADIAN

By

His Holiness Param Sant Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj

You may clearly understand why I have come to this world. I was in search of the trtuh. To-day you have been listening to the Tape Record. It was on the basis of the sermons of Saint Kabir. He says that all the devotees, even past saints and sages, failed to realize God. These were the ideas which were given in the books. I was born as a Hindu and got impressions and suggestions from the books to worship God or some ideal. I was not in a position to understand the sayings of the great Saints. It has been confirmed to me only by my disciples or from the experiences of the life of those who keep faith. How these devotees, worshippers of Christ, worshippers of Rama and Krishna and worshippers of any Guru have failed to reach the goal ? It was a problem. Now it has been solved. How ? People with their faith,

create my image and my image helps and guides them, tells them certain medicines to cure their diseases and while they die, they say my image takes them to destination. But I am not there. From this, I draw the conclusion that all the worshippers of any ideal, it may be Rama, Krishna, Christ or Guru, have not been able to go beyond the mind. They have not understood the reality. They all are moving and have been and will move in their mental region, in their thought whim. This morning one Sadhu was here. He in his mental intoxication (MASTI) hurt himself with a knife inflicting two blows, one on right and one of left side. Now look towards yourself. You are also entrapped in your mind. You want to solve the problem with intellect. You are searching that thing with your mind. You are searching the truth with your mind and senses. No one can reach the goal unless one goes beyond the mental region. He alone can reach the region of spirit or soul or real God. Somebody told me that you have come from Canada. I thought it my duty to guide you, and I wanted to be true to my conscience, otherwise I would have not talked to you, Carry on with your work, but one thing always remember. All the religions, all the goodness, all the evils, any kind of ideas which come

to a man is brain, are nothing but suggestions and impressions of mind and thought. Therefore, according to Hindu Shastras, we are directed in the beginning to go and catch the inner light which is called Savitri in Hindi script. If you wish that you may not come again in the physical form, the only way is to concentrate within yourself and go beyond the mental region, Concenterate on Light and Sound. Christ also said that word was with God and God was with the word. Is it not? That voice is inner sound. So I had an idea to publish these lectures,which I have given to you, in a book form. When will you be back to your Ashrama? I don't say that founder of the Ashramas are wrong, but they are uncomplete. They are not wrong. There are stages in man. Now suppose, I have studied up to M.A.; I cannot say that primarv classes are unnecessary. If I say so, I am a fool. These are also required. Those who wish to reach the top and wish salvation they must concentrate and meditate within them on Light and Sound. This is not a work of a day. Majority is not fit for this system of attaining the truth because the world wants mental solace and mental happiness, SAT, CHIT and ANANDA. Everybody is after Sat, Chit and Ananda. What is Sat? Physical feelings. What is Chit? Mental feelings, and what is Anand? Happiness of soul or bliss. If a man

tries to remain in the body, mind and spiritual senses, he cannot go beyond the region of Trinity. This world is made of Trinity - body, mind and soul. Our origin from which we have come, beyond Sachchidananda We came from there under the law of evolution, in this physical form. Due to our ignorance we are entrapped in Sachchidananda. In Hindus, there are so many faiths and most of them are the followers of Sachchidananda. But till this stage, one is desirous of Sat, Chit, Ananda, good physique, good body and good mind, good ideas of happiness and good ideas of bliss. This is the work of this stage. The real abode from where we have come is beyond the physical form an mental region. Now you can go. I have got good wishes for you. I heartily wish you health, wealth and peace of mind so long you are in this world and if you want salvation, try to catch the inner Light and Sound with faith within you.

Canadian :

Which first ? Light or Sound ?

His Holiness

First Light and then Sound.

Canadian :

How can one concentrate on the Light ?

His Holiness

In the beginning, you must leave the physical senses and then you can attain by concentration on some ideal which is made by your own mind. We meditate on some image or ideal. If you coninue this, automatically, you will forget the physical senses. When this practice is enhanced then you will catch the Light. After meditating on the Light, you will hear the sound and go in the sound. When you go in the sound, you will hear from inside, you will have different kinds of realizations. The different sounds have their own effect. For example, when one listens to the outside music, if it is Maru Rag, which is sung when soldiers go to war, one feels courageous. If one listens to the tunes played on the occasion of someone's death, one feels sorrow. Similar is the case of inner sounds. Different types of Lights and Sounds and their effects have been experienced by Yogis. This is called the science of Yoga and it needs practice. One experiences certain happiness and knowledge when one meditates on Light and Sound.

Canadian :

I want elucidation and clarification. How should one be sure that he is on the right path and has reached certain stage ?

His Holiness :

In the beginning, the association of a perfect man is very necessary. He will give you instructions according to your circumstances and your religion, place and time. It is not a work of one day. First of all you should pass primary classes, then in the course of time you will pass the M.A. Class. If one gives ideas of M.A. class to the students of primary classes, they will not be able to understand. Therefore one should keep the association of goodness and remain under the guidance of perfect men.

Canadian :

In America, there are no such men.

His Holiness :

I cannot say that there are such men or not, but I feel that we, Mahatmas or Ashramawalas are not true to our conscience. We do this work for our name and fame or for any other desire. I am also not free from this desire. I have made this Temple. I ask myself if I am free ftom this that one may come and give something for the Temple ? But what I do ? I express the truth. I touch my nose directly and not indirectly. You understand are not ? This world is such. We depend on the help of each other.

It is human nature.

Technique of God-Consciousness

IN HINDU TRADITION-PAST AND PRESENT WITH PARALLELS IN CHRISTIANITY

By

H. H. Manav Dayal Dr. Ishwar Chand Sharwa

Ours is the age of science and technology. Applied knowledge is playing an important role in our day today life. This very applied knowledge is termed technology. Technique is the method of applying theoretical knowledge to practical experience. Technology has been of immense practical value in the material advancement of man, which is the result of the research in all sciences whe her physical, biological or social. The material comforts and the eradication of many contageous diseases are some of the blessings of science and technology. The contention of this paper is that the technique of God-consciousness, as the applied knowledge of man's relation to

God, has and will continue to bring about the spiritual well being in the same manner, as the scientific awareness of his relation to nature has resulted in his material well being.

Before giving a detailed discussion of the technique of God consciousness in Hindu tradition with some parallels in Christianity, it seems important to clarfy that the knowledge or awareness in the material as well as the spiritual domain of man's environment has evolved gradually and progressively from ancient to the modern times.

The import of this statement is that the nature of matter and of God has always remained the same, whereas man's awareness of both these aspects of the Ultimate Reality has undergone change for the better. For example, electricity existed all over the earth even fifty thousand years ago. But our knowledge about the nature of electricity improved gradually, resulting in the untold benefits that the modern man enjoys from electronics. In spite of the existence of electrical energy in the hoary past, the cave man could not benefit, because his awareness of the nature of this energy was not so much advanced as it is today. Just as the awareness of the technique of benefitting from matter has come to the present level gradually, simi-

larly the technique of spiritual discipline and practices, advocated by various religious traditions of the past and present has progressively evolved to the highest level of God-consciousness. This gradual improvement of the technique in science as well as in religion does not indicate any lack in the nature of matter or God. It only points to the evolutional nature of their knowledge on the part of man.

God, as the Supreme Being has ever been, is, and will be the same. But our awareness of His Supreme Nature has been undergoing transformation. I feel that contemporary age calls for a comparative study of the technique of God consciousness, applied in all the major religions of the world, so as to arrive at the true nature of man's relationship with God. It may turn out that this relationship of man with the Divine is unique, practically experiencible and useful in pointing out that there is an underlying unity behind the apparent diversity among various religious traditions. The venture, therefore, might be worthwhile for consideration in the Assembly of the World's Religions.

Let me point out that the concept of God in the Hindu tradition from the Vedic period to the present day, has always emphasized that God is both immanent as well as transcendent. His immanent aspect

is constituted by the threefold functions of creation, sustenance and reabsorption of the material energy back into pure spirit. The symbolic expression of these three functions of God has been designated as Brahma, the creative self, Vishnu, the sustaining self and Shiva, the destroying self. This personification of the threefold expression of God corresponds to the Christian notion of God as the Father, the Son and the Holy Spirit. The unitive factor behind these three aspects has been designated as Brahman in the Vedas and the Upanishads.

It should be remembered that God, as omnipotent (Brahma), omniscient (Vishnu) and omnipresent (Shiva) is personal in the cosmic sense, because these three aspects of the physical, mental and spiritual bodies or selves belong to the Supreme Being, who is the transcendental self.

The description of God in the Hindu tradition is the result of the intuitive experience of the sages, free from any personal bias. God has been given different names in different contexts by the major religions of the world. God is designated as Love, Light, Bread, Breath, Spirit, Father, Son and the Hol Spirit etc., in the Holy Bible. But the basic truth is

Supreme Being.

These divisive ideas arise because God, the Spirit the Light, the Word, the Life and the Love has rarely been understood by the fanatic adherents of religion. Over emphasis on the diversities has provoked discard in human society, artificially spliting it into thousands of schools and sects. God is Truth and God is One, as every major religion holds. Then why should one community, one sect, one denomination, one religion, one race or one particular culture monopolize Him ? Truth cannot be the property of my particular race, religion or religion or nation.

The answer to these baffling questions lies in understanding the nature of man as a true manifestation of God and in adopting a spiritual discipline, which actualizes his potential perfection.

Man, as a complete man, is an integrated whole of body, mind, soul and pure self. He is the image of God in the sense that his body, mind and soul correspond to the Father, the Son and the Holy Spirit or Brahma, Vishnu and Shiva, as the gross, the subtle and the causal effulgent light body of Ged respectively. According to the findings of the practitioners of the spiritual discipline in Hindu tradition the physical body is 'Sat', or existence of life, the mind is 'Chit' or consciousness and the soul or causal body

is 'Anand' or blissful state. Infinite existence, infinite consciousness and infinite bliss (Sacchidananda) are attributed to God, as the Supreme Being. Since all these three attributes exists in man partially, he is, therefore, the true replica of God on earth. Man experiences the three functions of physical existence, mental consciousness and spiritual bliss everyday, in the three states of waking, dream and sound sleep. The waking consciousness is the function of the gross body, in which plurality of objects is experienced. In dream consciousness, the mental objects are experienced by the mental subject. This is the state of duality, in which the pleasure and pain are merely mental, not physical. In the dreamless sleep even the mind is obliterated or gross to rest. The only goes experience in dreamless sleep is that of non-duality or oneness. There is no pleasure or pain, loss or gain, anger, fear or hatred in the dreamless sleep. This experience of unity and bliss is the function of the spiritual body of man, who besides the three elements of existence, consciousness, and bliss, is also that transcendent indestructible pure spirit, which is the real divinity and transcendent God within him.

The purpose of spiritual disciplines and practices is to awken the spiritual perfection in man, so that he experiences God-consciousness, seeing the presence

of oneness in all the living beings. This level of God consciousness, is called 'Jivanmukti' in Hindu tradition and 'the Kingdom of God', in Christian tradition. A Jivanmukta (a person, who has attained the state of spiritual perfection, while in physical body) rises above the dualities of pleasure and pain, loss and gain and praise and blame, with the result that he can actually practice the principle of "Love your enemy". His love, for God becomes universal and he begins to see the presence of loving God in each and every being. The path of love for God or the Bhakti Marg, advocated in the Bhagavadgita affirms, "He who sees God in every being and every being in God is never separated from God, nor does God ever forsake him." It is both the means as well as the end, the technique as well as the attainment of God-consciousness. The statement of Jesus Christ asserting that if someone spanks you on your right cheek, you should turn the other cheek towards him, cannot be applied in practical life unless a person has attained the level of Jivanmukti.

Let me explain this type of God-consciousness with an example. Suppose someone spanks a person on the right cheek and the injured person gets ready to give a blow to the aggressor and suddenly if he aggressor were to change in the form of God, worshi-

pped by the injured person. will he not say, "Oh Lord ! I am sorry. I did not know that you gave me the blow. Lord ! here is the other cheek."

The Bhakti Yoga (the path of Love), as the technique of God-consciousness, has four forms. These are (1) Dhyana Yoga, the Yoga of meditation on the form of God, (2) Upasana Yoga the worship of God with love and devotion, (3) Karma Yoga, the service of God by performing your duty for the sake of duty and (4) Surat-Shabda Yoga, the Yoga of uniting the soul with the Supreme Self by following the instructions of a Perfect Master or Guru to turn the attention inward.

The intention of this essay is to explain the technique of Surat Shabda Yoga or the Yoga of Light and Sound, which is both ancient and modern, and the practice of which is so universal that it does not require anyone to change his or her religious affillation In fact, this technique is covertly present in all the major religions of the world.

Before giving a systematic exposition of this universal technique, it would be desirable to clarify the meaning of the word 'Yoga'. The word 'Yoga' has been derived from the verbal root 'Yuj' in

Sanskrit language. 'Yuj' means uniting or harnessing. Thus, Yoga stands for the union of the soul with God. The actual pronunciation of the 'Yoga' is 'Yog'. The last letter 'a' is silent. The English equivalent of 'Yoga' is 'Yoke'. Yoke occurs more than once in the Old Testament and also in the Old Testament it stands for the Yoke of God. In the New Testament Jesus Christ's words "Bear my Yoke" imply the union of the lower self with Christ Self.

Keeping in mind that Yoga is the technique of uniting with God, one can understand how the various Yogas, mentioned above him at the same goal of God-consciousness. Whereas, meditation and worship may be ittle difficult and require some external restraints and rituals, the Yoga of Light and Sound is easy and spontaneous. In fact, the benefits derived in all the other Yogas are contained in the Surat Shabda Yoga.

There are three prerequisites of this spiritual discipline, viz: (1) Satsang (hearing the spiritual discourse, (2) Satguru (accepting a perfect master as the guide,) and (3) Satnam (meditating on the word or name of God by applying the three restraints

on the tongue, the eyes and the ears) so as to awaken God-consciousness. Spiritual discourse means getting acquainted with the nature of God, and man's relationship with God either by hearing the discourse of a living master or by reading spiritual literature like the Sermon on the Mount or a similar sermon delivered by any perfect master, who is physically not living at present. However, it should be remembered that even in the case of reading a spiritual discourse from the scriptures, it is essential for the aspirant to seek the help of some living master to understand the practical applicability of the said spiritual discourse. It is, therefore, better to accept a living perfect Master as an ideal. Accepting of Sadguru or the perfect Master is the second prerequisite, This acceptance of the perfect master calls for a deep love and devotion for the Master, who should be regarded as the living form of the Supreme God. One may accept Krishna, Buddha, Jesus Christ, Moses or any other living or non living perfect master as the true guide. An unqualified love for the perfect master would certainly expedite the inner development of the aspirant. This prerequisite is present, especially in Christianity. In fact, this is the quintessence of all religions. The love of God and the love of man, who is the replica of God, alone can invoke a uni-

versal love in the aspirant, who later on begins to feel the presence of God in every individual.

Being moved by the love and devotion of the aspirant, the perfect master expounds the method of experiencing God within, to the disciple. The exposition of the technique of the threefold restraint, requires an explanation of the words Light and Sound. It should be remembered that the causal body, or the soul is light, which is the basis of the mental body or mind. The mind, in turn is the ground, the creator and the sustainer of the physical body as in man, so in the cosmos. Light is the basis and the ground of the universal mind or the universal Christ (Vishnu), which, in turn is the basis and the ground of the cosmos, constituted by the universes, galaxies and solar systems etc., which represent the physical body of God. It should be remembered that the way to the Supreme God, who, in His manifested Supreme nature, is the Word or Sound (Shabda), is light, which is the first manifestation of the Word. Both Hinduism and Christianity do accept Light and the Sound aspects of the Supreme Being, who in the beginning is Shabda, the original Sound or Word and later manifests Itself in Light.

When God incarnates Himself in the human

form, He declares Himself to be Light of Lights. Lord Krishna says in the Bhagavadgita, "I am the Light of Lights." Similarly Jesus Christ declares, "As long as I am in the world, I am the light of the world."

The sages of ancient India discovered long ago that the Shabda Brahman Word) is the highest source of all existence in the cosmos. Shabda Brahman stands for the Super Sound, as the ground of all creation. According to this tradition, Sound gives rise to light i.e , space--Akash gives birth to light, light to air, air to water, and water to earth. Since all the physical elements earth, water, air fire originate from and merge into the sound, the sonud is therefore the source as well as the goal of all creation. The creation is unfolded spirit with the first manifestation as the sound and the last manifestation as the earth. The vastness and the infinitude of the space with sound as its characteristic, is therefore the Ultimate Abode of all beings. This infinitude can be attained by man, if he merges back into the original Word or Sound through the process of Yoga of Light and Sound.

The Yoga of Light and Sound makes an aspirant go inwardly back to the original state of union with

the W ord y following the prescription of the three-fold restraint is very simple and easy. The potentiality of our p rfection for God-consciousness is obst ruc ed by our habit of fixing our attention on the outside, everchanging and transitory world. Three sense organs out of five are especially responsible for our being attached to the external physical environment. These sense orgens are the tongue, the eyes and the ears. The Yoga of Liget and Sound suggests that we should shut our tongue, close the eyes and close the ears to turn our attention inward, so that the vistas of inner space are opened up. By doing so, we travel inwardly, as if in outer space from level to level, and ultimately reach the state of merger with the orig nal Sound. This simple technique can be adopted by everyone, irrespective of the differences of caste, creed, religion, sex, age and intellectual background.

When we shut the tongue, its habit of speaking should be transfered to the mind. The aspirant should mentally repeat a name of God r of any form of God, which his religious background permits him to choose. By doing so, his attention will turn inward. When we close our eyes, our gaze should be fixed inwardly in the middle of the eyebrows, the point where the immense effulgent light of our soul is stored up.

It will make us see all the lights of the solar systems, galaxies and universes; ultimately making us experience a unique light, the like of which is never experienced with open eyes. When we close the ears, our attention should be directed to the inner sound, which in the beginning is loud and gross and which becomes subtle gradually. The sound changes into various musical tunes and pitches. The attention to this inner music, resembling 'the music of spheres' helps us to calm our mind, which becomes still (Be still and know that I am God—Old Testament), motionless and peaceful. The sound becomes soundless, loudness becomes stillness and the aspirant feels a deep sense of 'disness'. When the practitioner of this techniqne returns from the state in which he had risen above all dualities and conflicts, his attitude is absolutely changed in his day-to-day life. He begins to realize the unity behind diversity and harmony in discard. Then and then alone, he attains that state of 'Jivanmukti' or the level of 'the Kingdom of God within', which raises him to the state of God-consciousness, Christ-consciousness, Supra-consciousness. He does not hate anyone or feel jealous. His anger changes into love and his attachment to the transitory objects disappears. He is in the world, but not of the world. Love and meditation become the part of his normal experience.

This spiritual discipline is not sectarian, nor does it require an aspirant to change his or her religious affiliation. Each and every one can arrive at this highest religious experience, starting from his own traditional background. In this way the aspirant comes to understand how and why his own religious tradition was the means of attaining God-consciousness. He also comes to know to what extent his particular religious affiliation and his adherence to his traditional discipline and practices, iucluding the rituals and the worship were necessary to attain the goal of God-consciousness, while living a normal worldly life. This awareness broadens the view of the aspirant. He beings to realize that it is not a sin to be born in a particular religion, but it is a foolishness to die in it, without rising above it.

The actual experience of God-consciousness, so attained, opens one's eyes and makes one feel that there is a unity behind the apparent diversity among various religious traditions. Philosophy, science and religion become integrated for the person, who has experienced God consciousness. Intellectual exercise of lingual analysis and theoretical elaboration can never solve the problem of 'unity in diversity'. Inner experience alone can clear our vision and even logically make us consistent in our uuderstanding of religious truth, which is not only not inconsistent with the scientific truth, but is also unavoidably complimentary to it.

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।

BOOK POST

Regd No. 26265/74
MANDIR

JAN 10th 1994
PB HSP—5

Address

[redacted] Bahadur Singh,
[redacted] 1-7-90 Kumarpalli, H/E
[redacted] ost. Hanamkonda,
Distt. Warangal (A.P.)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD.
HOSHIARRPUR, 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao press Manavta Mandir Hoshiarpur (pb.)